* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

अष्टांग योग

असम्प्रज्ञात समाधि

सम्प्रज्ञात समाधि

ध्यान

धारणा

प्रत्याहार

प्राणायाम

आसन

नियम

वर्ष ९५

संख्या ६

गीताप्रेस, गोरखपुर

अष्टांग योग

भगीरथपर गंगाजीकी कृपा

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

यतो वेदवाचो विकुण्ठा मनोभिः सदा नेति नेतीति यत्ता गृणन्ति।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

वर्ष ९५

गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, जून २०२१ ई०

संख्या ६

पूर्ण संख्या ११३५

राजर्षि भगीरथपर गंगाजीकी कृपा

भगीरथ उवाच

मातस्त्वं सुप्रसन्ना मे यदि त्वं शिवसुन्दरी। तदा हरिपदाम्भोजान्निःसृत्यैहि धरातले॥
पवित्रां धरणीं कृत्वा प्रविश्य विवरस्थलम्। उद्धारय पितॄन्पूर्वान्मुनिना भस्मसात्कृतान्॥
पितॄणां यदि निस्तारं करोषि त्रिदशस्तुते। तदाहं कृतकृत्यः स्यामेतन्मे वाञ्छितं शिवम्॥

गङ्गोवाच

एवमस्तु महाराज विष्णुपादाम्बुजादहम्। विनिःसृत्योद्धरिष्यामि तव पूर्वतमान्पितॄन्॥

भगीरथ बोले—माता, शिवसुन्दरी! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो भगवान् विष्णुके चरणकमलसे निकलकर पृथ्वीतलपर चलें और पृथ्वीको पवित्र करके विवरमें प्रविष्ट होकर मुनिके द्वारा भस्मसात् किये गये मेरे पूर्वजोंका उद्धार करें। देवताओंकी वन्दनीया! यदि आप मेरे पूर्वजोंका उद्धार कर दें, तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा, यही मेरी मंगलमयी अभिलाषा है।

गंगाजी बोलीं—महाराज! 'ऐसा ही होगा'। मैं भगवान् विष्णुके चरणकमलसे निकलकर आपके सभी पूर्वजोंका उद्धार करूँगी। [महाभागवतपुराण]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर आषाढ़, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, जून २०२१ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — **वार्षिक** US$ 50 (` 3,000) ; **पंचवर्षीय** US$ 250 (` 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम   राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण   कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम   राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण   कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम   राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण   कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम   राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण   कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम   राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण   कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम   राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण   कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम   राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण   कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम   राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण   कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम   राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण   कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम   राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कलियुगमें भगवन्नाम ही सार है और साधक जीवोंका सर्वस्व है। महामारीके इस संकट-कालमें यथासाध्य भगवन्नामका आश्रय लेकर मानव-जीवनको सफल बनाना चाहिये।

—सम्पादक

कल्याण

याद रखो—यह सारी सृष्टि और सृष्टिका समस्त व्यापार भगवान्‌के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। भगवान् ही अपने-आपमें अपनी सृष्टि करते हैं, भगवान् ही अपने-आपका आप ही पालन करते हैं और भगवान् ही अपने-आपका आप संहार करते हैं। वे स्वयं अपनी शक्ति योगमायासे आप ही सब कुछ बन जाते हैं।

याद रखो—तुम्हारे साथ उनका कभी वियोग नहीं होता, वियोगकी बात तो अलग रही, सच्ची बात तो यह है कि तुम्हारे रूपमें भगवान् ही अपनी लीला कर रहे हैं। तुम्हारी दृष्टि संसारकी मिथ्या वस्तुओंकी ओर लगी है, इसीसे तुम्हें भगवान्‌का वियोग दिखायी देता है।

याद रखो—भगवान् सबमें, सब कुछ होते हुए भी सबसे न्यारे हैं—सबसे परे हैं। जगत्‌की ये तीनों अवस्थाएँ भगवान्‌में कल्पित हैं—कल्पित क्या हैं, भगवान् आप ही सब कुछ बनकर सबमें प्रविष्ट हो रहे हैं और सारी अवस्थाओंको उन्होंने स्वीकार कर लिया है।

याद रखो—भगवान् तुमसे कभी अलग नहीं हो सकते और तुम भगवान्‌से कभी अलग नहीं हो सकते; क्योंकि अलग हो ही नहीं। पर इसका अनुभव तुम्हें तभी हो सकता है, जब तुम सर्वत्र भगवान्‌को देखो और सबको भगवान्‌में देखो।

याद रखो—मिट्टीके भाँति-भाँतिके बरतन बने हैं, सोनेके तरह-तरहके गहने बने हैं, चीनीके विविध नाम-रूपोंके खिलौने बने हैं; परंतु क्या वे मिट्टीके सब बरतन मिट्टीसे अतिरिक्त कोई वस्तु हैं, क्या वे सोनेके गहने सोनेको छोड़कर और कुछ हैं? और क्या वे चीनीके खिलौने सर्वत्र मिठासभरी चीनी ही नहीं हैं? जैसे ये नाम-रूपोंका महान् और असंख्य प्रकारका अन्तर होनेपर भी वस्तु-तत्त्वकी दृष्टिसे मिट्टी, सोना और चीनी ही हैं, वैसे ही यह विविध नाम-रूपमय संसार भी वस्तुतः भगवान् ही हैं। हाँ, अन्तर इतना अवश्य है कि इन वस्तुओंका निर्माण करनेवाले कुम्हार, सोनार और हलवाई अलग-अलग हैं और इन वस्तुओंसे भिन्न हैं। वे निमित्तकारण हैं और मूल वस्तुएँ उपादानकारण हैं। परंतु भगवान् आप ही निमित्त हैं और आप ही उपादान हैं। उन्होंने ही सब कुछ बनाया है और वे ही सब कुछ बने हैं।

याद रखो—जबतक मूल तत्त्व-पदार्थपर दृष्टि नहीं होगी और जबतक बाहरी नाम-रूपोंको ही सत्य मानते रहोगे, तबतक वस्तुतत्त्व तुम्हारे सामने, तुम्हारे हाथमें रहते हुए भी तुम उसे पाओगे नहीं। खोजते ही रहोगे। तत्त्वपदार्थको खोजो मत, उसे पहचान लो। जबतक यह पहचान नहीं होगी, तबतक जैसे अज्ञ बालक चीनीसे बने सर्प, सिंहको देखकर डरता है, चीनीका स्वाद चखकर सुखी नहीं हो सकता, वैसे ही सदा-सर्वदा भयानक भवाटवीमें भटकते रहोगे, नित्य-सत्य-सर्वत्र-सब समय रहनेवाले भगवान्‌को पाकर उनके अनन्त सुखकी उपलब्धि नहीं कर सकोगे।

याद रखो—न तो भगवान्‌को कहींसे लाना है और न भगवान्‌के लिये तुमको कहीं जाना है। तुम अपने नाम-रूपसे अलग होकर अपने असली स्वरूपकी ओर दृष्टि लगा दो और जगत्‌के नाम-रूपके आवरणको हटाकर भगवान्‌को तुम्हारी ओर देखने दो। बस, भगवान् तो सदा मिले ही हुए हैं।

याद रखो—भगवान्‌के न मिलनेकी बात तभीतक है, जबतक भगवान्‌की पहचान नहीं हो जाती और अपनी आँखोंका परदा नहीं हट जाता। भगवान्‌के सिवा तुम्हारे नित्य साथ रहनेवाली, सभी अवस्थाओंमें सदा जाग्रत् रहनेवाली, तुम्हारे रूपमें अपनेको ही अभिव्यक्त करनेवाली वस्तु और कोई है ही नहीं। उसकी उपलब्धि करो, सदा सर्वत्र उपलब्धि करो और कृतार्थ हो जाओ। कृतार्थ तो हो ही। कृतार्थ न माननेकी भूलको मिटा दो। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

अष्टांग योग

'योग'के विषयको लोगोंने ऐसा जटिल बना और समझ रखा है कि इसका नाम ही भयंकर हो गया है। इसका कारण यह है कि इधर कुछ समयसे 'योग' पदसे लोग 'हठयोग'—केवल आसन-मुद्रादिको समझने लगे हैं। और आसन-मुद्रादि एक तो स्वयं जटिल विषय हैं, दूसरे इन शारीरिक क्रियाओंसे आध्यात्मिक लाभ क्या और कहाँतक हो सकता है, सो भी समझना कठिन है। बात तो यों है कि अभ्यासात्मक योगके सर्वांग तत्त्वोंका समझना गुरुके बिना कठिन है। परंतु थोड़ा-सा विचार करनेसे इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि 'हठयोग' यद्यपि योगका अंग अवश्य है पर तो भी है 'योग'का अंग ही, स्वयं 'योग' नहीं, अर्थात् योगका साधनमात्र है, और सो भी प्रधान नहीं।

ऐसे 'अंग' योगके आठ कहे गये हैं—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४)प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, (८) समाधि। इनमें पहले पाँच योगके 'बाह्य अंग' हैं, बाकी तीन 'अन्तरंग' हैं (योगभाष्य ३। १)। ये तीन हैं धारणा, ध्यान, समाधि। ये ही तीन प्रधान हैं। कारण यह है कि ये ही तीन प्रक्रियाएँ हैं, जिनका उपयोग सब कार्योंमें होता है। जिस किसी ज्ञानकी प्राप्तिकी इच्छा हो, उस ज्ञानके विषयमें जब ये तीनों लगायी जाती हैं, तभी उचित ज्ञान प्राप्त होता है। जबतक ज्ञेय पदार्थपर मन एकाग्ररूपेण नहीं लगाया जाता, तबतक उसका ज्ञान असम्भव है। इसलिये प्रथम सीढ़ी हुई यही एकाग्रता, जिसे 'धारणा' कहा है (सू०३।१)। इसके बाद मन जब लगातार बहुत कालतक इसी तरह एकाग्र रहे तो यह हुआ 'ध्यान' (सू० ३। २)। और जब मन इस ध्यानमें इस तरह मग्न हो गया कि उसका ध्येय पदार्थमें लय हो गया तो यही हुई 'समाधि' (सू० ३। ३)। किसी कार्यके सम्पन्न होनेमें इन तीनोंकी आवश्यकता होती है। यह केवल आध्यात्मिक अभ्यास या ज्ञानके लिये ही आवश्यक नहीं है, कार्यमात्रके लिये आवश्यक है। कोई भी कार्य हो, जबतक उसमें मन नहीं लगाया जाता, कार्य सिद्ध नहीं होता। इसी 'मन लगाने' को 'धारणा-ध्यान-समाधि' कहते हैं।

ये तीनों एक ही प्रक्रियाके अंग हैं। इसीसे इन तीनोंका साधारण एक नाम 'संयम' कहा गया है (सू० ३। ४)। इसी 'संयम' (अर्थात् धारणा-ध्यान-समाधि)-से ज्ञानकी शुद्धि होती है।

इन योगसूत्रोक्त उपदेशोंको जब हम मामूली कामोंमें लगाते हैं और इनके द्वारा सफलता प्राप्त करते हैं, तब हमको मानना पड़ता है कि 'योग' का सबसे उत्कृष्ट और उपयोगी लक्षण जो श्रीभगवान्‌ने कहा है, वही है—

'योगः कर्मसु कौशलम्।'

इस 'योग' के अभ्यासके लिये प्रत्येक मनुष्य सदा तैयार रहता है। 'गुरु' मिले तब तो योगाभ्यास करें—ऐसे आलस्यके साधन सभी निर्मूल हैं। यों कोई कर्तव्य सामने आ जाय, उसमें संयम (अर्थात् धारणा-ध्यान-समाधि)-पूर्वक लग जाना ही 'योग' है। इसमें यदि कोई स्वार्थ-कामना हुई तो यह योग अधम श्रेणीका हुआ और यदि निष्काम है—'कर्तव्य'-बुद्धिसे किया गया है और फल जो कुछ हो सो ईश्वरको अर्पित है तो यही 'योग' उच्चकोटिका हुआ। जब अपने सभी काम इसी रीतिसे किये जाते हैं तो वही आदमी जीवन्मुक्त कहलाता है।

कैसा सुगम मार्ग है, लोगोंने दुर्गम बना रखा है। पर मनका 'लाग' चाहिये—तत्परता, तन्मयता। कठिन नहीं है—दूसरे किसीकी आवश्यकता नहीं है—अपने हाथका खेल है। पर श्रद्धा और साहस चाहिये।

इसमें शास्त्रार्थ या तर्क-वितर्ककी जरूरत नहीं है। इसको कोई भी आदमी किसी सामान्य कार्यके प्रति इस प्रक्रियाकी परीक्षा करके स्वयं देख सकता है। पर इस प्रक्रियाके आदिमें श्रद्धा और आगे चलकर साहसकी अपेक्षा होगी, जिससे प्रक्रिया अपनी चरम कोटितक पहुँच जाय।—**महामहोपाध्याय डॉ० श्रीगंगानाथजी झा**

भगवान् वशमें कैसे हों ?

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

किसीको वशमें करना हो तो उसकी सेवा करो, उसके गुण गाओ, उसकी आज्ञाका पालन करो। सेवासे महात्मा वशमें हो जाते हैं; ब्रह्मा, विष्णु, महेश—सब प्रसन्न हो जाते हैं। किसीको वशमें करना हो तो यह विद्या सबसे बढ़कर है। फिर भगवान्को ही वशमें क्यों न करें, जिससे सब वशमें हो जायँ। भगवान् कहते हैं, जो मेरी भक्ति करता है, वह यदि मुझे बेचे तो मैं बिकनेके लिये तैयार हूँ—

'बेचे तो बिक जाऊँ नरसी म्हारो सिर धणी।'

संसारके सब पदार्थ धनसे मिलते हैं, पर भगवान् धनसे नहीं मिलते। स्वयं अपने-आपको भगवान्के अर्पण कर दे तो भगवान्का यह नियम है कि वे भक्तके वशमें हो जाते हैं। भगवान्को यदि खरीदना हो तो सबसे बढ़कर यह विद्या है—सत्य बोलना, दूसरेकी स्त्रीको माताके समान मानना और भगवान्के अधीन रहना—

सत्य वचन आधीनता परतिय मात समान।
इतनेमें हरि ना मिलें तुलसीदास जमान॥

एक ही बात ऐसी है, जिसके धारण करनेसे सब अपने-आप आ जाती हैं। राजाको बुलानेसे सारी सेना आ जाती है। उसी तरह भगवान्की भक्तिसे सारे गुण और दैवी सम्पदा आ जाती है। वह सद्गुण-सदाचारकी मूर्ति बन जाता है। आपसे और बात बने तो ठीक है, अन्यथा भगवान्को अवश्य याद रखें। जड़में भगवान् हैं—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥

(गीता १५। १)

आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपलके वृक्षको अविनाशी कहते हैं; तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं—उस संसाररूप वृक्षको जो पुरुष मूलसहित तत्त्वसे जानता है, वह वेदके तात्पर्यको जाननेवाला है।

उद्दालक ऋषिके पुत्रका नाम श्वेतकेतु था। वेद-वेदान्त आदि पढ़कर आनेके बाद उसने कहा—मैं विद्वान् हूँ। अहंकार आ गया और पिताको मूर्ख समझकर नमस्कार नहीं किया। वास्तवमें जो अपनेको पण्डित समझे, वह मूर्ख है। पिताने कहा—बेटा! वह विद्या सीखे कि नहीं जिस एक बातके जाननेसे सारी बातका ज्ञान हो जाय। लड़केने कहा—यह तो नहीं पढ़ी। पिता बोले—एक परमात्माका ज्ञान होनेसे सबका ज्ञान हो जायगा। उन्होंने पहले ही सोच लिया था कि वह ज्ञान होता तो अहंकार नहीं आता।

लड़का यदि सौ वर्ष माता-पिताकी सेवा करे तब भी वह उनसे उऋण नहीं हो सकता, चाहे आजीवन सेवा करे तब भी उऋण नहीं हो सकता—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

एकके ज्ञानसे सबका ज्ञान कैसे होता है? जैसे सोनेका जिसको ज्ञान हो गया, उसे सोनेके आभूषण सोना दीखने लगेंगे, लोहेका ज्ञान होनेपर तमाम अस्त्र-शस्त्र लोहा दीखने लगेंगे। मिट्टीका ज्ञान होनेपर तमाम बरतन मिट्टी दीखने लगेंगे। भगवान् गीतामें कहते हैं—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष 'सब कुछ वासुदेव ही है'—इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

परमात्माके ज्ञानसे सारे ब्रह्माण्डका ज्ञान हो जाता है। अपनेसे तो यह समझ लो कि जो समय गया सो गया, अब बाकी समय हरिमें लगा दो। अब तो यही निश्चय कर लो कि जो कुछ अच्छा या बुरा बीत गया सो बीत गया, अब बाकी समय चलते, उठते, बैठते, खाते हर समय परमात्माको याद करना चाहिये। अपने-आपको भगवान्में लगा दे।

मैं आशिक तेरे रूपपर बिन मिले सबर नहीं होती।

—यह भाव धारण होनेपर भगवान्को बाध्य होकर आना पड़ेगा। भगवान् प्रेमसे मिलते हैं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना । प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

हरि सबके पापोंका हरण करनेवाले, पापीसे पापीको पवित्र बनानेवाले, पवित्रोंमें पवित्र, मङ्गलोंमें मङ्गल हैं—ऐसे भगवान् सर्वत्र विराजमान हैं। दियासलाईकी रगड़से जैसे आग उत्पन्न होती है, उसी तरह प्रेमकी रगड़से परमात्मा मिलते हैं। अपने-आपको धूलमें मिला दे, खूब लगन लगा दे अथवा यह इच्छा

करे कि हमारा शरीर धूल हो जाय और उसपर भगवान् शयन करें तो हमारा जन्म सफल हो जाय। अपने-आपको भगवान्के समर्पण कर दे। गमछेका मालिक उसे चाहे जिस तरह काममें ले उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं है, इसी तरह अपने-आपको परमात्माके अर्पण कर देवे। आजतकका जो समय बीता सो बीता, पर बाकी समय परमात्मामें लगा दे। प्रेममें पागल हो जाय, ऐसे पागलकी आवश्यकता है। लोग पागल होते हैं धनके लिये, पर तुम पागल बनो भगवान्के लिये। सीताजी भगवान्के विरहमें व्याकुल हो रही हैं, विलाप कर रही हैं, भगवान् भी सीताके विरहमें व्याकुल होकर विलाप कर रहे हैं। जरा सोचो, क्या भगवान् व्याकुल हो सकते हैं ? पर जब सीताजी व्याकुल हैं, तभी प्रेममें भगवान् व्याकुल हैं। भगवान्को पागल बनाना हो तो पहले तुम उनके प्रेममें पागल बन जाओ।

संसारसे वैराग्य और भगवान्से प्रेम—ये दो ही चीजें हैं। संसाररूपी वृक्षको एकदमसे काट डाले और अपने-आपको भगवान्में लगा दे। संसाररूपी दृढ़ मूलवाले वृक्षको वैराग्यरूपी अस्त्रसे काट दे फिर उस परम रत्न परमात्माकी खोज करे। संसारको उत्पन्न करनेवाले और इसका विस्तार करनेवाले भगवान् हैं। हम सैकड़ों कोसोंसे कुछ समयके लिये यहाँ आते हैं। कई महीने तीर्थयात्रा की, खूब भटके, ऐसी जगह नहीं मिली। भगवान्ने यह स्थान पहलेसे ही हमलोगोंके लिये तैयार कर रखा था। सिर्फ इसकी रक्षाके लिये चारों तरफ पत्थर खींचे गये हैं। इसकी सेवा, इसको ही सब कुछ जानकर एक लोटा जल इस वृक्षमें डाल दे। यज्ञ और तपके भोक्ता भगवान् हैं, मानो अग्निरूपसे भगवान् ही उस चीजको ले रहे हैं। देवताकी पूजा करे तो यह समझना चाहिये कि भगवान् ही देवताके रूपमें पूजा करा रहे हैं। इस तरह सबमें ऐसा ही समझे। उसी तरह इस वटवृक्षको समझे।

नामदेवजीके घरमें आग लगी तो लोगोंने कहा—आपके घरमें आग लगी है। भागकर आये, कहा—प्रभो! आपने आधेका ही भोग लगाया। आधेका क्यों नहीं लगाया, हे भगवन्! इसने क्या अपराध किया। आपने खूब कृपा की, अग्निरूपमें हमारे घरमें पधारे। एक कुत्ता दो रोटी उठाकर भागा तो पीछे-पीछे घीका कटोरा लेकर भागे—महाराज! चुपड़ी हुई नहीं है, चुपड़वा तो लो; भगवान्को प्रकट होना ही पड़ा।

हमारे यहाँ भगवान् बहुत सस्ते हैं, एक लोटा जलमें मिल सकते हैं, पर भाव ऐसा होना चाहिये। समुद्रमें जिस तरह लहरें उठती हैं, उसी तरह इस स्थानपर वैराग्य उठता है। वनके बीचमें जानेसे एकदम वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। यहाँ तो तीन चीजें दिखायी देती हैं—गंगाका किनारा, पहाड़ एवं वृक्ष, पर वहाँ वनमें सिर्फ वृक्ष-ही-वृक्ष दिखायी देते हैं। अपनी पहाड़की गुफा प्राकृतिक है। मेहनत-मजूरीवाले ऐसा नहीं बना सकते, गंगाने बनायी है। ईश्वरकी हमलोगोंपर पूर्ण दया है, उन्होंने सब सामान सजा रखा है। अपनेको तो यहाँ आकर डेरा डाल देना है। भगवान्की शरण होना हमारा काम है और कुछ नहीं। सारा प्रबन्ध भगवान्ने कर दिया; गंगास्नान, जप-तप, चाहे सो कर लो, पर भगवद्भजन करो। गंगाके दर्शनसे पाप समाप्त हो जाते हैं। यहाँ तो खाने-पीने सबमें गंगा-ही-गंगा हैं। गंगाकी रेणुका—जो मरनेके समय लाख रुपये देनेपर भी बीकानेर आदिमें एक मुट्ठी नहीं मिल सकती, यहाँ बिखरी पड़ी है। इसे तो भगीरथ ही लाये थे। जो विशेष परिश्रम करता है, उसके लिये कहते हैं—उसका परिश्रम भगीरथ-परिश्रम है। इसलिये भगीरथको धन्यवाद देना चाहिये, जो उनकी कृपासे हमलोगोंको गंगाजी सुलभ हुईं। तुलसीदासजी चले गये, पर उनकी रामायण लाखों, करोड़ों मनुष्योंका उद्धार कर रही है। संसारसे वैराग्य और भक्तिमें प्रेम यही एक चीज सार है। सारे बिखरे हुए प्रेमको बटोरकर भगवान्में लगा दे। सबमें सोलह आने प्रेम है, उसको हटाये और परमात्मामें लगाये। एकसे तोड़े और एकसे जोड़े।

भगवान्में प्रेम लगाकर संसारसे आसक्ति मिटाकर चाहे मनको कह दो कि अब तुम चाहे जहाँ जाओ, जहाँ प्रेम नहीं होता, वहाँ जाना नहीं होता। मल-मूत्रमें कोई भी प्रेम नहीं करता है, इसी प्रकार संसारको त्याग दे। संसाररूपी बगीचेमें रहते हुए और उसको न छूते हुए रहे। तमाम भोग मल-मूत्रके समान प्रतीत हों। जिस तरह साधु बगीचेमें रहते हुए भी फूल नहीं तोड़ते। इत्र, फुलेल आदिको गधेका पेशाब समझे। ऐसे ही मेवा, मिष्टान्नको समझे, ऐसे ही अन्य भोग्य पदार्थोंको समझे। वैराग्यसे उपरति होगी और उपरतिसे ईश्वरका ध्यान होगा। वैराग्यसे जो सुख है, उससे बढ़कर सुख परमात्माके ध्यानमें है और ध्यानसे अनन्त गुना सुख भगवान्से मिलकर है। उससे बढ़कर कोई भी आनन्द नहीं है। इस कलियुगमें भगवान्के पास जानेकी सीधी सड़क है। जो काम वर्षोंका था, वह दिनोंमें होता है। जिन पुरुषोंमें श्रद्धा नहीं है, उनके लिये भगवान् कहते हैं चौरासी लाख योनिमें भी मैं उसे नहीं चाहता। श्रद्धा करो, भगवान् अपने-आप मिलेंगे, अगर श्रद्धा नहीं हो तो उसके लिये भगवान्से प्रार्थना करो।

'स्व' का विस्तार

(बाबा श्रीराघवदासजी)

हमारा स्व, हमारा अपनापन कितना व्यापक है या कितना संकीर्ण है, इसीपर हमारे मनकी रचना हो जाती है। यदि हम अपने पार्थिव शरीरमें ही केन्द्रित हैं तो इस शरीरके अतिरिक्त सब पराये होनेसे उनके सुख-दु:खमें शामिल होनेकी मनोवृत्ति हममें नहीं रहेगी। शरीरके ही सुख-दु:खमें वह सदैव लगी रहेगी और इसका परिणाम भी स्पष्ट ही है। दूसरे भी उसी दृष्टिसे देखेंगे। इससे आगे बढ़कर हमारा स्व—अपने शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले माता, पिता, पत्नी तथा बच्चोंतक ही सीमित रहा तो इन सबके सुख-दु:खमें शामिल होनेकी भावना बनी रहेगी। इनके अतिरिक्त अन्य परिवार पराया हो जानेसे हमारे सुख-दु:खमें वे अपनी उदारताके कारण भले ही शामिल हों, पर उसका कारण हमारी वृत्ति नहीं है। वह उनकी उदारता है। इसके आगे बढ़कर हम अपने गाँव या मुहल्ले या नगरको अपना समझेंगे तो हमारे चिन्तन तथा व्यवहारमें बहुत अन्तर पड़ेगा और दूसरोंका—ग्रामवालोंका व्यवहार भी हमारे साथ अपनेपनका ही होगा।

आज जो चारों ओर बेचैनी है, असन्तोष है एवं दूसरोंके प्रति अविश्वास है, क्या उसके मूलमें हमारी अपने 'स्व'की सीमित भावना नहीं है? द्वैतभावसे भय होता है, यह वेदवचन है '**द्वितीयाद्वै भयं भवति**' ज्यों-ज्यों हम इस द्वैतभावको बढ़ावा देते रहेंगे, त्यों-त्यों ही हमारा भय बढ़ेगा और उसके फलस्वरूप परस्पर उपेक्षा, अविश्वास और एक-दूसरेको हानि पहुँचानेकी वृत्ति भी बढ़ेगी।

इधर भगवान्को माननेका दावा करें और उधर भगवान्की ही सन्तानोंपर—अपने भाई-बहिनोंपर अविश्वास ही नहीं बल्कि उनका अहित-चिन्तन तथा उनके साथ प्रत्यक्ष दुर्व्यवहार करनेसे न हिचकें। यह हमारे लिये कहाँतक उचित है? क्या आस्तिकताके साथ इसका कहीं मेल बैठता है? हमारी 'स्व'की भावनासे हमारी भगवान्के प्रति क्या भावना है, इसका अनुमान सहज हो सकता है।

जो व्यापारी उचितसे अधिक मुनाफा लेता है, जो भी कारखानेदार अपने मजदूरोंके प्रति केवल कानूनी कर्तव्यकी भावना रखता है, उनके प्रति अपनेपनकी भावना नहीं रखता, जो जमीनवाले लोग अपना नाम कागजमें है—केवल इसी आधारपर असहाय खेतिहरोंको बेदखल करनेमें अपने जीवनकी इतिश्री मानते हैं, वे अपने पार्थिव शरीर तथा उससे सम्बन्धित स्वमें कितना अपनापन अनुभव करते हैं, इसको हम आँकड़ोंसे स्पष्टरूपसे समझ सकते हैं।

जो केवल अपने शरीरको ही 'स्व' मानते हैं, उनके लिये भारतके शेष नागरिक पराये हैं, जिनका स्व अपने कुटुम्बमें सीमित है, उनके लिये दूसरे कुटुम्ब पराये हैं, जिनका स्व गाँवमें व्याप्त है उनके लिये दूसरे ग्रामीण पराये हैं। इसी तरह तहसील, जिला, प्रदेश तथा सम्पूर्ण भारतकी दृष्टिसे देखेंगे तो उत्तरोत्तर यह स्व व्यापक होगा और परायोंकी संख्या घटेगी।

परायोंसे भय होता है। अब हमको यह निर्णय करना है कि पराये बढ़ाकर हम अपना भय भी बढ़ायें या पराये कम बनाकर अपनेको अधिक निर्भय बनायें?

भगवान्ने दैवी-आसुरी सम्पत्तिके वर्णन-प्रसंगमें दैवी सम्पत्तिमें 'अभय'को प्रथम स्थान दिया है। जो निर्भय नहीं होगा, वह अन्य दैवी गुणोंकी रक्षा भी कैसे कर सकेगा। दैवी गुणोंकी परीक्षा भी तो कठिन होती है। जो शुद्ध सोना होगा, वह अधिक कसा भी जायगा। सोना तपाया जायगा, तभी तो वह शुद्ध होनेका प्रमाण दे सकेगा।

इसलिये जब हम अपरिग्रह करते हैं, यज्ञका अवशिष्ट सेवन करते हैं, तब अपनेको महान् स्वसे एकमय बनाकर अधिक निर्भय हो जाते हैं।

हमारे पूर्वजोंने साधनाकी, तपस्याकी या पुरुषार्थकी जो महिमा गायी है, आश्रम-व्यवस्थामें तीन आश्रमोंको निर्धन बनाये रखनेकी जो व्यवस्था की है, उसके मूलमें भी यही अपरिग्रहका—कम-से-कम पराये बनाकर मनुष्यको अधिक-से-अधिक निर्भय बनानेका ही शास्त्रीय कार्यक्रम रखा गया है।

आजके अणुबमके युगमें, जब कि, मानव-समाज

अत्यन्त भयभीत है और एक-दूसरेपर अविश्वास कर रहा है, (उस समय) इस भारतीय परम्पराको अपनाना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। इसलिये भूमिदान, सम्पत्तिदान, साधनदान आदिके द्वारा केवल अपने स्वको 'विश्व-व्यापी' स्वमें जितनी अधिक मात्रामें हम मिला सकते हैं, उतना मिलानेके लिये यह कार्यक्रम है। समय रहते हम इसको अपना सकें तो अधिक निर्भय होंगे और अपने स्वका अधिक-से-अधिक स्वरूप पहचाननेमें भी समर्थ होंगे।

जगत्प्रसिद्ध अणु-प्रयोगके आविष्कारक तथा वैज्ञानिक श्रीआइन्स्टाइन चिन्तनके लिये समुद्रतटपर एक दिन जा रहे थे। उन्होंने देखा कि एक छोटा-सा पाँच-छः सालका बच्चा रेतमें एक छोटा-सा गड्ढा खोदकर उसमें सीपसे पानी लाकर भर रहा है। तीन-चार घंटेके बाद जब वे वैज्ञानिक महाशय लौटे तो देखा कि अब भी वह बच्चा पूर्ववत् अपने काममें मग्न है। उसका मुँह लाल हो गया था, पर खुशी-खुशी वह अपने काममें लगा हुआ था। उन्होंने बच्चेसे पूछा— 'भाई! यह क्या कर रहे हो?' उसने कहा कि 'मैं समुद्रको इस गड्ढेमें भरूँगा।' इसपर वृद्ध बोले कि 'समुद्र बहुत बड़ा है, वह इस छोटे-से गड्ढेमें कैसे आयेगा?' इसपर वह बालक बोला कि 'क्या आप प्रभु ईसामसीहकी यह बात नहीं जानते हैं कि तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जाय तो उसमें सर्वव्यापक भगवान् स्वयं आकर बैठ जाता है। क्या इसी तरह इस गड्ढेमें वह समुद्र नहीं समायेगा?' बच्चेका यह अटल विश्वास देखकर भौतिक वैज्ञानिक आइन्स्टाइन नतमस्तक हो गये। उन्होंने बच्चेके चरण छुये और कहा कि 'बच्चे! तुम मेरे लिये ईसामसीह हो। तुमने मुझे भगवान्‌की सही महिमा दिखलायी।' इसके बाद भौतिकवादी आइन्स्टाइन तत्त्ववेत्ता अध्यात्मवादी आइन्स्टाइन बन गये।

प्रार्थना कीजिये!

प्रार्थना अनुभवका विषय है, बहसका नहीं। भगवान्‌के नाम-स्मरणसे बढ़कर किसी भी दूसरी चीजमें मैंने ताकत महसूस नहीं की।

आज काल-प्रवाह ईश्वरके अनुकूल है। कभी-कभी वह ईश्वरके खिलाफ जाता है, तब कालका खण्डन होता है; क्योंकि ईश्वरका खण्डन कभी नहीं हो सकता। फिर प्रलय हो जाता है। विष्णुसहस्रनाममें एक शब्द आया है—'कालनेमिनिहा'**। जहाँ काल ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध जाता है, वहाँ काल खण्डित होता है और ईश्वर टिकता है। जहाँ समाज-प्रवाह काल-प्रवाहके खिलाफ जाता है, वहाँ समाज खण्डित होता है, काल टिकता है। जहाँ व्यक्ति समाजप्रवाहके खिलाफ जाता है, वहाँ व्यक्ति खण्डित होता है, समाज टिकता है। इस वक्त काल और ईश्वर दोनों एक हो गये हैं और समत्वकी माँग कर रहे हैं। इससे बढ़कर कोई माँग नहीं हो सकती।**

ईश्वर प्रेरणा दे रहा है विषमताका विरोध करनेकी, समताको लानेकी, तो मुझे लगता है कि ईश्वर प्रलय नहीं चाहता। अगर वह प्रलय नहीं चाहता तो समाजको कालप्रवाहके और ईश्वरके अनुकूल होना ही है।

हिन्दुस्तानके लोग तो भावुक हैं ही, लेकिन दुनियाभरमें किस किताबकी सबसे ज्यादा प्रतियाँ खपी हैं? टॉल्स्टॉय, लेनिन आदिका साहित्य खपता है, लेकिन बाइबिलके सामने उसका कोई हिसाब नहीं है। यानी यूरोप और अमेरिकामें भी अन्तः-प्रवाह आध्यात्मिक विचारका ही है। वह न होता तो आज दुनियामें जो भूख पैदा हुई है कि सारी दुनिया एक हो, वह पैदा न होती। इसलिये आज दुनिया उसी हालतमें है, जिसमें हम हैं। ऐसी हालतमें हमारा यह तर्क करना कि 'प्रार्थनामें बैठनेपर जब मन इधर-उधर जाता है तो प्रार्थनामें बैठें ही क्यों' बिलकुल गलत है। हमें श्रद्धा रखनी चाहिये और ईश्वरसे सीधा सम्पर्क स्थापित करना ही चाहिये।

प्रार्थनाके आकार-प्रकार आदिके बारेमें मुझे कुछ नहीं सुझाना है। जिस मुँहको जो शब्द खींचते हैं, वह उन्हीं शब्दोंद्वारा प्रार्थना करे।—श्रीविनोबा भावे

विषयोंका हरण भगवान्‌की कृपा ही है

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

श्रीमद्भागवतमें नलकूबर और मणिग्रीवकी कथा आती है। ये दोनों कुबेरके पुत्र थे। अलकामें रहते थे। दिन-रात विहार किया करते थे। इनको कोई रोकनेवाला नहीं था।

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥

यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुत्व और अविवेक—इन चारोंमेंसे एक भी हो तो अनर्थका कारण होता है, पर जहाँ ये चारों साथ हो जायँ, वहाँ तो फिर कहना ही क्या है। कुबेर-पुत्रोंमें ये चारों थे। ये जवान थे, धन-सम्पत्ति थी, प्रभुत्व था और था अविवेक। यौवनका मद था, धनका मद था, अधिकारका मद था, कुबेरके पुत्र थे, स्वेच्छाचारी थे, अविवेकी थे। एक दिनकी बात है। ये दोनों अप्सराओंके साथ नंगे नहा रहे थे—विलास कर रहे थे। उधरसे श्रीनारदजी आ निकले। श्रीनारदजीको देखते ही स्त्रियाँ तो जल्दी बाहर निकल गयीं और वस्त्र पहन लिये, किंतु ये दोनों बड़े उद्दण्ड थे, उसी तरह नंगे खड़े रहे। नारदजीने कहा 'तुम दोनों जड़की भाँति खड़े हो, जाकर वृक्ष हो जाओ।'

प्रश्न होता है ऋषि-मुनि तो क्षमाशील होते हैं, बुरा करनेवालेका भी भला करते हैं। उनमें क्रोध कैसे उत्पन्न हुआ और उन्होंने नलकूबर एवं मणि-ग्रीवको शाप कैसे दे दिया? वहाँ आता है सन्तोंकी अवमानना बड़े विनाशकी चीज है करनेवालेके लिये। दूसरी बात, जब धनमें, राज्यमें, अधिकारमें, सफलतामें आदमी अन्धा हो जाता है, तब जबतक उसके पास वे चीजें रहती हैं, तबतक उसका अन्धापन नहीं मिटता। उसे प्रेमपूर्वक समझानेका प्रयत्न किया जाय, तो वह उलटा नाराज हो जाता है, बिगड़ खड़ा होता है। ऐसी अवस्थामें उसकी दवा यही है कि वह वस्तु उसके पास न रहे। जो धन-दुर्मदान्ध होते हैं, जिनको धनके मदने अन्धा कर दिया है, अपनी सफलताके नशेमें जो बिलकुल पागल हो रहे हैं, अन्धे हो रहे हैं—ऐसे दुष्टोंके लिये दरिद्रता ही परम ओषधि है।

'असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम्।'

उनके पाससे उन वस्तुओंका हट जाना ही उनको नेत्रदान करना है। किसीको ज्ञान-मद हो जाता है। भगवान् उसे हर लेते हैं, भगवान् हमारी मनचाही नहीं करते। नारदजीने इसीलिये उन्हें शाप दिया कि जिससे उन बेचारोंका यह रोग—धन-मद नष्ट हो जाय। उनको आँखें मिल जायँ और वे भगवान्‌को प्राप्त करें। जड़तारूप इस कड़वी दवाके साथ श्रीनारदजी उनको मधुरतम दुर्लभ आशीष भी दिया कि 'वृक्षयोनि प्राप्त होनेपर भी मेरी कृपासे इन्हें भगवान्‌की स्मृति बनी रहेगी और देवताओंके सौ वर्ष बीतनेपर इन्हें भगवान् श्रीकृष्णका सांनिध्य प्राप्त होगा, तब इनकी जड़ता दूर हो जायगी। इन्हें भगवच्चरणोंका प्रेम प्राप्त होगा। ये कृतार्थ हो जायँगे।'
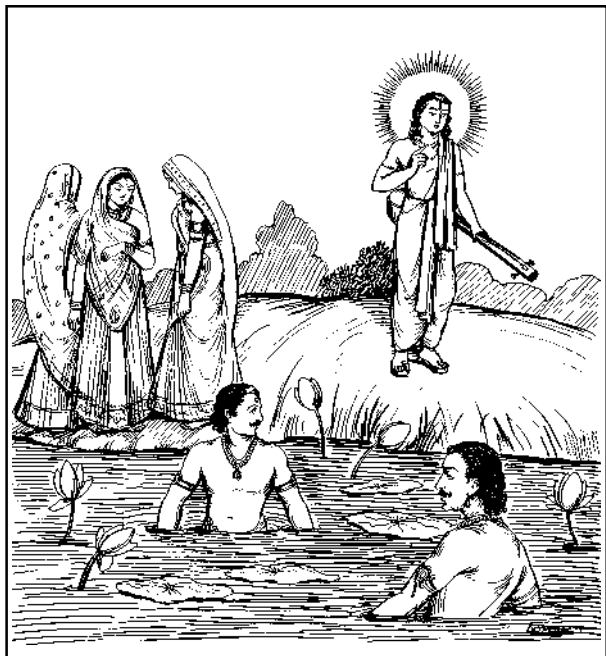
स्वयं श्रीनारदजीने चाहा था हम राजकुमारीसे

विवाह कर लें, पर भगवान्‌ने उन्हें वानरका मुँह दे दिया। यह कथा शिवपुराण और रामचरितमानसमें आती है। श्रीनारदजीको बड़ा दुःख हुआ। श्रीभगवान्‌को बहुत कुछ कह गये, 'भगवान् तो स्वेच्छाचारी हैं, उन्हें किसीका सुख-सौभाग्य नहीं सुहाता। वे अपना ही भला चाहते हैं' आदि, न जाने क्या-क्या मोहमें वे कह गये। परंतु भगवान्‌ने उनपर कृपा की। पीछे उन्हें पश्चात्ताप भी हुआ। भगवान्‌ने उन्हें बताया, 'हमने आपके हितके लिये ही ऐसा किया था—

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि॥

आप-सरीखे विरक्तके लिये स्त्री सारे अवगुणोंकी जड़, शूलप्रद तथा समस्त दुःखोंकी खान है, यही मनमें विचारकर मैंने आपका विवाह नहीं होने दिया।'

भगवत्कृपाका यह विलक्षण भाव देखकर नारदजीका शरीर रोमांचित हो गया। नेत्रोंमें प्रेम तथा आनन्दके अश्रु छलक उठे—***'मुनि तन पुलक नयन भरि आए।'***

यह समझ लेनेकी बात है। कहीं हमारे विषयोंका हरण होता है, मनचाही वस्तु नहीं मिलती, वहाँ निश्चय ही समझना चाहिये कि भगवान् हमपर कृपा करते हैं।

मानव-शरीर विषयोपभोगके लिये नहीं है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधकको निश्चयपूर्वक समझना चाहिये कि मनुष्यका शरीर विषयोंका उपभोग करनेके लिये नहीं मिला है। विषयोंका उपभोग तो पशु-पक्षी आदि हरेक योनिमें यह जीव अनन्तकालसे करता आया है, उसके लिये मनुष्य-शरीरकी कोई विशेषता नहीं है।

मनुष्य-शरीर मिला है अपनी भूलको मिटानेके लिये अर्थात् जीवने जो अपने प्रमादसे अनेक प्रकारके दोषोंका संग्रह कर लिया है, उनको साधनद्वारा नाश करनेके लिये। यदि कोई कहे कि भगवान्‌ने जीवमें भोगोंकी इच्छा उत्पन्न ही क्यों की? यदि भोगोंकी वासना न होती तो प्राणी उन भोगोंकी प्राप्तिके लिये चेष्टा ही क्यों करता? तो इसका यह उत्तर है कि जीवमें भोग-वासना ईश्वरने उत्पन्न नहीं की है। भगवान्‌ने तो इस परम्परागत भोग-वासनाको मिटानेके लिये ही कृपा करके मनुष्य-शरीर दिया है। यदि इसमें भोग-वासना पहले न होती तो शरीर देनेकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती। जब कोई रोग होता है, तभी उसको मिटानेके लिये चिकित्साकी जरूरत होती है। अतः भोग-वासनाको मिटानेके लिये ही भोग-वासनाके साथ-साथ भगवान्‌ने मनुष्यको योगकी, बोधकी और प्रेमकी लालसा भी प्रदान की है। भोगोंका क्षणिक सुख भी किसी-न-किसी प्रकारके संयोगसे अर्थात् विषय और इन्द्रियोंके सम्बन्धसे मिलता है। यह योगकी ही झलक है। इसी प्रकार रागमें प्रेमकी झलक है। प्रेमका ही दूसरा रूप राग या मोह है और अविवेकमें विवेककी झलक है, क्योंकि विवेकका सर्वथा अभाव नहीं होता। उसकी कमीमें सन्देह उत्पन्न होता है, जो जिज्ञासाके रूपमें बोधका हेतु हो जाता है। जब साधक प्राप्त विवेकके द्वारा अपने बनाये हुए दोषोंको दूर कर लेता है, तब भोगवासना योगमें, राग अनुरागमें और अविवेक बोधमें बदल जाता है। दोषोंकी उत्पत्ति और गुणोंका अभिमान—यही चित्तकी अशुद्धि है। इसीको मिटानेके लिये साधन है। अतः साधकमें बोधका, योगका और प्रेमका भी अभिमान नहीं रहना चाहिये। अभिप्राय यह है कि योग हो, परंतु मैं योगी हूँ, ऐसा अभिमान न हो, ज्ञान हो, परंतु मैं ज्ञानी हूँ—ऐसा अभिमान न हो और प्रेम हो, परंतु मैं प्रेमी हूँ, ऐसा अभिमान न हो।

भगवान्‌से जीवकी किसी प्रकारकी भी दूरी नहीं है। भगवान् और जीव जातिसे और स्वरूपसे भी एक हैं। दोनों ही नित्य हैं, अतः कालकी भी दूरी नहीं है। दोनों एक ही जगह रहते हैं, अतः देशकी भी दूरी नहीं है। दोनोंका सम्बन्ध भी नित्य है। इतनी निकटता और एकता होते हुए भी जो दूरीकी प्रतीति होती है, वह केवलमात्र अभिमानके कारण है।

साधकोंके प्रति—

असत्‌-पदार्थोंके आश्रयका त्याग

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

असत्‌-पदार्थोंका आश्रय मानना मनुष्योंकी बड़ी भूल है। इन उत्पन्न और नष्ट होनेवाले पदार्थोंके बिना मेरा काम नहीं चलेगा—यह सोचना मुख्य भूल है। आप स्वयं परमात्माके अंश हैं, इसलिये आप सत्‌ हैं। संसारकी वस्तुएँ सब-की-सब परिवर्तनशील हैं, इसलिये वे असत्‌ हैं। सत्‌का कभी अभाव नहीं होता अर्थात्‌ वह कभी न रहता हो तथा उसमें किसी प्रकारकी कमी आती है—ऐसा है ही नहीं। असत्‌ वस्तुओंका कभी भाव नहीं होता अर्थात्‌ वे कभी भी एकरूप रहती ही नहीं। जिस समय रहती प्रतीत होती हैं, उस समय भी वे नष्ट ही हो रही हैं। इस प्रकार इन दोनोंका (सत्‌ और असत्‌का) तत्त्व तत्त्वदर्शी महापुरुषोंद्वारा देखा गया है। दोनोंके तत्त्वको जाननेका अभिप्राय यह है कि एक सत्‌-तत्त्वका अनुभव रह जाना—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

(गीता २। १६)

बचपनसे आजतक मैं वही हूँ—ऐसा प्रत्येक मनुष्यका अपना अनुभव है। शरीर, शक्ति, योग्यता, देश, काल, परिस्थिति, खेलके पदार्थ आदि सबमें परिवर्तन हुआ है; परंतु मैं वही हूँ। परिवर्तित होनेवाले तो हुए असत्‌ और मैं हुआ सत्‌। सत्‌ वैसा-का-वैसा रहा। आजतक इसका कभी अभाव हुआ नहीं। उसमें किसी प्रकारकी कमी आयी नहीं, फिर भी मनुष्य अपनेको असत्‌के अधीन मानता है और कहता है कि मेरा इनके बिना काम नहीं चलेगा। रुपये-पैसेके बिना, कुटुम्बके बिना, मकानके बिना, कपड़ोंके बिना, रोटी, अन्न-जलके बिना मेरा काम नहीं चलेगा। इस प्रकार इन परिवर्तनशील पदार्थोंका आश्रय लेना असत्‌का आश्रय है। इनका स्वतन्त्र अस्तित्व है ही नहीं। स्वतन्त्र अस्तित्व होता तो इनको असत्‌ कैसे कहते? असत्‌ नाम उसीका होता है, जिसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। वह किसीके आश्रित रहता है, निरन्तर मिटता रहता है, अदृश्य होता रहता है, निरन्तर अभावमें जाता रहता है। आश्चर्य होना चाहिये कि मैं सत्‌ होकर असत्‌के पराधीन कैसे हो गया हूँ!

पराधीनतामें स्वाधीनता-बुद्धि—यह मुख्य भूल है। इस बातको आप ठीक तरहसे समझें। मान लें कि हमें एक चश्मा लेनेकी आवश्यकता हुई। चश्मा लेना है तो क्या करें? किससे कहें? कौन दिलावे? हम तो पराधीन हो गये। यदि हमारे पास रुपये होते तो हम पराधीन नहीं होते, झट (तुरन्त) चश्मा मोल ले लेते, परंतु रुपया हमारे पास नहीं है, इसलिये हम पराधीन हो गये। तात्पर्य यह हुआ कि 'रुपया मेरे पास होनेसे मैं चश्मा मोल ले लेता और रुपया न होनेसे मैं पराधीन हो गया।' परंतु मनुष्य इसपर ध्यान नहीं देता कि यह रुपया क्या है? रुपया भी तो 'पर' ही है। रुपया 'स्व' थोड़े ही है, रुपया आता और जाता है और आप रहते हैं तो रुपया भी तो 'पर' ही हुआ। आप स्वयं रुपये हैं क्या? रुपयोंके अधीन होनेपर भी अपनेको स्वाधीन मान लिया—यह बड़ी भूल होती है।

पराधीनतामें स्वाधीनता-बुद्धि हो गयी—यह बड़ा भारी अनर्थ हुआ। इसके समान दूसरा अनर्थ कोई है ही नहीं। सम्पूर्ण पाप इसके बेटे हैं। पाप है, अन्याय है, झूठ है, कपट है, नरक है—सब इस बुद्धिके होनेसे ही होते हैं। आपमें पराधीनता-बुद्धि हो गयी, गजब हो गया! रुपया 'स्व' है अथवा 'पर' है? रुपयोंके अधीन होना पराधीनता है अथवा स्वाधीनता? इसपर आप भलीभाँति विचार करें। यह महान्‌ अनर्थकी बात हो गयी कि पराधीनतामें स्वाधीनताकी बुद्धि हो गयी। मानते हैं कि रुपये हमारे पास हों तो हम झट रेलपर, हवाई जहाजपर चढ़कर जहाँ जाना हो चले जायँ; यह ले लें अर्थात्‌ हम स्वतन्त्र हैं और रुपये हमारे पास नहीं, इसलिये हम पराधीन हुए। अब हमें औरोंके मुखकी ओर ताकना पड़ता है।

परंतु हमलोग इधर ध्यान नहीं देते कि रुपये होनेसे

हम पराधीन हुए या स्वाधीन? विचारपूर्वक देखा जाय तो सिद्ध होता है कि अधिक रुपये होनेसे अधिक पराधीन और थोड़े रुपये होनेसे थोड़े पराधीन होते हैं। यद्यपि यह बात प्रत्यक्ष है कि रुपये हों तो अमुक वस्त्र ले लें, अमुक वस्तु ले लें अर्थात् हम स्वाधीन हैं और रुपये हमारे पास नहीं तो रुपयोंके बिना वस्तुएँ मिलतीं नहीं तो हम स्वाधीन कैसे हुए? भैया! असली स्वाधीन हम तब होंगे, जब हमें कोई आवश्यकता ही न रहे। चश्मेकी आवश्यकता नहीं, वस्त्रकी आवश्यकता नहीं, अन्न और जलकी भी आवश्यकता नहीं अर्थात् हमें किसी असत् वस्तु-पदार्थकी आवश्यकता नहीं है; क्योंकि हम सत् हैं। हम इनके बिना भी रह सकते हैं, पर ऐसी स्वाधीनता कब होगी? जब अपनेको शरीरसे अलग अनुभव करेंगे, तब सच्ची स्वाधीनता होगी।

शरीरके साथ मिलकर आप और शरीर एक हो जाते हैं। अब शरीरकी आवश्यकता आपकी आवश्यकता हो जाती है। जैसे, कोई पुरुष विवाह कर लेता है, वह स्त्रीके लिये लहँगा, नथ आदि मोल लेता है। वह कहता है कि मुझे नथ और लहँगा चाहिये। उससे पूछें कि 'क्या तुम लहँगा, नथ आदि पहनते हो?' तो वह उत्तर देता है—'नहीं! मुझे नहीं, घरमें चाहिये!' उसने जब स्त्रीके साथ सम्बन्ध कर लिया, तब स्त्रीकी आवश्यकता भी उसकी अपनी आवश्यकता हो गयी। ऐसे ही इस शरीरके साथ 'मैं और मेरापन' कर लेनेसे शरीरकी आवश्यकता आपको अपनी आवश्यकता दीखने लग गयी। यही भूल है। यह आपकी आवश्यकता नहीं है, यह शरीरकी आवश्यकता है। आपको किसी भी वस्तुकी आवश्यकता कभी नहीं हुई, न है और न होगी ही, वस्तुतः वह बिलकुल नहीं है।

प्रश्न—शरीरसे अलग मैं हूँ, यह अनुभव नहीं होता, क्या करें?

उत्तर—आप सत् हैं, शरीर असत् है—यह जानते हैं या नहीं? आप अविनाशी हैं, शरीर विनाशी है, फिर अविनाशी आपकी विनाशी शरीरसे एकता कैसी? आप सत् होते हुए भी असत् शरीरसे सम्बन्ध मानते रहते हैं—यही भूल है।

प्रश्न—'शरीरसे मैं अलग हूँ'—इस अलगावको तो जानते हैं, पर यह जानकारी स्थायी नहीं रहती?

उत्तर—आप यदि इस जानकारीको स्थायी रखना चाहेंगे तो क्यों नहीं रहेगी? आपको इसके टिकाऊ न रहनेका कोई दुःख थोड़े ही है। सच्ची बात है कि आप अलग हैं, शरीर अलग है—ऐसा आपका अनुभव भी है। सच्ची बात सच्ची ही रहती है, परंतु आप इस बातका आदर नहीं करते हैं, यह आपकी भूल है।

आप शरीर-निर्वाहकी चिन्ता करते हैं, परंतु मर्मकी बात यह है कि शरीरकी आवश्यकताकी पूर्तिका प्रबन्ध पहलेसे है। अन्न, जल आदिकी शरीरकी आवश्यकताएँ स्वतः प्रारब्धसे पूरी होती हैं। मनुष्य व्यर्थमें उनकी चिन्ता करता रहता है—

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा शरीर।
तुलसी चिन्ता क्यों करे, भज ले श्रीरघुबीर॥

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने स्वयं कहा है कि शरीर-निर्वाह प्रारब्धके अधीन है। आप और हम जान-बूझकर विपत्ति मोल लेते हैं। शरीरका तो जैसे निर्वाह होना होगा, वैसा होगा, चेष्टा कितनी ही कर लें, भाग्यमें यदि मरना ही होगा, तो अन्न रहते मरना पड़ेगा और यदि नहीं मरना है तो कुछ भी चेष्टा नहीं करेंगे तो भी शरीरका निर्वाह होगा।

शरीरकी आवश्यकताओंकी पूर्तिका प्रबन्ध परमात्माकी ओरसे पहलेसे है, पर आपकी तृष्णाकी पूर्तिके लिये कहीं प्रबन्ध नहीं है। इस बातपर ध्यान देना। आप जो चाहते हैं कि इतना मिल जाय, इतना मिल जाय—उस कामनाकी पूर्तिके लिये कहीं प्रबन्ध नहीं है; परंतु आपके शरीर-निर्वाहके लिये प्रबन्ध पूरा-का-पूरा है। जिसने आपको जन्म दिया है, उसने आपका पूरा प्रबन्ध कर दिया है। विचार करें कि अपनी-अपनी माँके स्तनोंमें दूधके प्रबन्धके लिये आपने या हमने कोई उद्योग नहीं किया था? वह प्रबन्ध जिसने किया था, क्या वह बदल गया? क्या वह मर गया? क्या अब नयी बात हो गयी? इसलिये निर्वाहमात्रकी चिन्ता कभी नहीं करनी चाहिये।

चेष्टा करनेके लिये मैं रोकता नहीं, निर्वाहमात्रके लिये चेष्टा करें। पदार्थोंका हमारे कर्मोंके साथ सम्बन्ध है। इसलिये उद्योग करें, परिश्रम करें; परंतु चिन्ता मत करें। चिन्तन तो केवल परब्रह्म परमात्माका ही करें। चिन्तन-योग्य तो एकमात्र परमात्मतत्त्व ही है। संसारके पदार्थोंका चिन्तन तो व्यर्थ है और उनका चिन्तन करना केवल मूर्खता है।

जैसे मोटरगाड़ीकी चार अवस्थाएँ होती हैं—(१) एक तो वह गैरेजमें खड़ी है। इस समय गाड़ीका न तो इंजन चलता है और न पहिये, दोनों बन्द हैं। (२) जब मोटर चालू करते हैं, तब इंजन तो चलने लगता है, पर पहिये नहीं चलते। (३) मोटरगाड़ीको जब चालू कर देते हैं, तब चक्के भी चलते हैं और इंजन भी चलता है और (४) चलते-चलते यदि स्वच्छ ढालू मैदान आ जाय, स्पष्ट सड़क दीख रही हो, वृक्ष आदिकी कोई आड़ न हो और जमीन नीचेकी ओर हो तो उस समय इंजन बन्द कर दे तो पहिये चलते रहेंगे और इंजनमें तेल जलेगा नहीं। इस प्रकार मोटरकी चार अवस्थाएँ हुईं। इन चारों अवस्थाओंमें बढ़िया अवस्था कौन-सी है? इंजन तो चलता नहीं और चक्के चलते हैं एवं घटिया अवस्था कौन-सी हुई? तेल जले अर्थात् इंजन चले और पहिये चलें नहीं। तात्पर्य यह हुआ कि खर्च तो होता नहीं और यात्रा हो जाय—यह अवस्था सबसे बढ़िया हुई। ऐसे ही हम भीतरसे चिन्ता करते हैं—यह तो है तेलका जलना (घटिया अवस्था) और चिन्ता न करके कर्तव्य-कर्म करना—यह है बिना तेल जले चक्कोंका चलना (बढ़िया अवस्था)। इस बढ़िया अवस्थाके लिये गीता (२।४७)-में भगवान्ने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

कर्म करते रहें, फलकी इच्छा कभी मत करें। अकर्मण्य कभी मत हों, क्या मिलेगा, कैसे मिलेगा—इसकी चिन्ता मत करें; क्योंकि चिन्तासे, कामनासे पदार्थोंका सम्बन्ध नहीं है। पदार्थोंका सम्बन्ध कर्मोंसे है। वे कर्म चाहे पहलेके हों अथवा वर्तमानके। चिन्तनसे केवल परमात्मा मिलते हैं। यहाँ समझ लेना चाहिये कि चिन्तन कर्म नहीं है। चिन्तन है परमात्माकी प्राप्तिकी लालसा। परमात्मा अपनी लालसासे मिलते हैं और पदार्थ कर्मोंसे मिलते हैं। इसलिये कर्म करें, पर चिन्ताका इंजन चलाकर तेल क्यों फूँकें अर्थात् चिन्ता क्यों करें? कामना क्यों करें?

चिन्ताके विषयमें एक बात और समझनेकी है। अन्त:करणकी दो वृत्तियाँ हैं—एक विचार और दूसरी चिन्ता। विचार करना आवश्यक है और चिन्ता करना दोष है। चिन्ता करनेसे बुद्धि नष्ट हो जाती है—'**बुद्धिः शोकेन नश्यति।**' 'चिन्ता मत करो'—ऐसा कहनेमें विचार न करनेकी बात नही है, प्रत्युत कार्य करनेमें विचार तो आवश्यक है। कारण कि विचारपूर्वक जो कर्म किया जायगा, वह कर्म ठीक होगा और यदि इसमें चिन्ता हो जायगी तो वह कार्य बढ़िया नहीं होगा, प्रत्युत वह काम घटिया होगा और उसके करनेमें भूल हो जायगी। जिसे शोक-चिन्ता होती है, उसे होश नहीं रहता और उसकी बुद्धि विकसित नहीं होती। इसलिये भगवान्ने चिन्ता न करनेके लिये कहा है तथा छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा काम विचारपूर्वक करनेके लिये कहा है।

चिन्ता करके हम अपनी आवश्यकता पूरी कर लेंगे—यह हमारे हाथकी बात नहीं है। अपनी आवश्यकताके विषयमें विचार किया जाय तो जिन्हें हम शरीरकी वास्तविक आवश्यकता मानते हैं, वह आवश्यकता वास्तविक आवश्यकता नहीं है; क्योंकि शरीर ही जब वास्तविक नहीं है, सत् नहीं है, तब उसकी आवश्यकता वास्तविक कैसे होगी? आप स्वयं वास्तविक (सत्) हैं तो आपकी आवश्यकता ही वास्तविक आवश्यकता है। आपकी आवश्यकता है—परमात्मतत्त्वको प्राप्त करनेकी। यही आपकी वास्तविक आवश्यकता है। संसारकी जो कामना है और शरीर-निर्वाहमात्रकी आवश्यकता है—यह पूरी होनेवाली होगी तो पूरी हो जायगी और पूरी होनेवाली नहीं होगी तो पूरी नहीं होगी; पर परमात्मतत्त्वकी आवश्यकता आप चाहेंगे तो अवश्य पूरी होगी; क्योंकि उसीके लिये ही मनुष्य-शरीर मिला है।

मनुष्य-शरीर केवल खाने-पीनेके लिये नहीं मिला है। भोग भोगनेके लिये नहीं मिला है। रुपया कमानेके लिये नहीं मिला है। हमने शास्त्रोंमें ऐसा कहीं नहीं पढ़ा कि रुपये कमानेके लिये मनुष्य-शरीर मिला है। शास्त्रोंमें ऐसा भी नहीं पढ़ा कि हृष्ट-पुष्ट बनानेके लिये ही मनुष्य-शरीर मिला है अथवा भोग भोगनेके लिये ही मनुष्य-शरीर मिला है, प्रत्युत शास्त्रोंमें यही पढ़ा है कि मनुष्य-शरीर केवल अपना उद्धार करनेके लिये, कल्याण करनेके लिये मिला है।

कल्याणके विषयमें भी एक बड़ी रहस्यकी बात है। इधर प्राय: भाई लोगोंका ध्यान नहीं जाता। संसारका आश्रय रखते हुए ही साधन करते रहते हैं। देह आदि (संसार)-का आश्रय रखते हुए ही साधन करनेसे भगवत्तत्त्वकी अनुभूति होगी—यह मानना बड़ी भूल है। कारण कि किये हुए साधनसे अहंभाव ज्यों-का-त्यों बना रहता है और सारे-के-सारे साधन अहंभावसे ही किये जाते हैं। 'अहं—मैंपन' जबतक परमात्मतत्त्वसे अभिन्न नहीं होता, तबतक परिच्छिन्नता बनी रहती है। इसलिये शरीरसे अर्थात् मन, बुद्धि, इन्द्रियोंसे तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती।

विवेक-शक्ति मानवमात्रको प्राप्त है और उसमें अपने-आपको असत्‌से अलग जाननेकी शक्ति है। इस प्रकार विवेकद्वारा अपनेको असत्‌से सर्वथा पृथक् जानकर सत्-स्वरूपमें अपनी स्वाभाविक स्थितिका अनुभव किया जा सकता है। मनुष्य-शरीरमें इसी विवेक-शक्तिकी महिमा है, न कि मनुष्यकी आकृतिकी। हमने असत्‌के साथ तादाम्य, ममता और कामना करके ही अपनी स्वतन्त्र सत्ता अर्थात् 'मैंपन' खड़ा कर लिया है। इस 'मैंपन'को विवेकद्वारा मिटा सकते हैं। 'मैंपन' के मिटनेसे तादात्म्य, ममता और कामनाका स्वत: अभाव हो जायगा। असत् वस्तुओंका आश्रय लेकर अर्थात् उनके साथ सम्बन्ध जोड़कर हमने अपनी जो एक अलग सत्ता मान ली—यही हमारी मुख्य भूल है। भगवत्प्रदत्त विवेकके प्रकाशमें हम उस भूलका अन्त बहुत सुगमता और शीघ्रतासे कर सकते हैं।

नारायण! नारायण! नारायण!

महायोगी गोरखनाथका सन्त कबीरपर प्रभाव

(डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त)

महायोगी गोरखनाथजीका सबसे अधिक प्रभाव मध्यकालीन सन्त साहित्यकार कबीरदासजीपर दिखायी पड़ता है। गोरखनाथजीके हठयोग और विचार-दर्शनसे कबीर प्रभावित हुए। कबीरकी एक-एक वाणी गोरखनाथजीकी वाणियोंसे अनुप्राणित है। कबीर अपने युगके सबसे बड़े लोकोपदेशक हैं, पर उनके साहित्यका अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि उनके ऊपर महायोगी गोरखनाथजीकी स्पष्ट छाप है।

हठयोगका प्रवर्तन करनेवाले महायोगी गोरखनाथने योगियों एवं साधकोंके लिये मुक्तिमार्ग निर्धारित किया है। हठयोगकी क्रियात्मक साधनाके लिये योगज्ञानसम्पन्न गुरुकी आवश्यकता होती है। अनुभवसिद्ध ज्ञानसे सम्पन्न गुरु ही शिष्यको साधना-पथपर अग्रसर करता है। गोरखनाथजीके साहित्यमें अनेक स्थानोंपर गुरु-महिमा वर्णित है। हठयोगके द्वारा कुण्डलिनी-जागरणसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रमें शिवसे साक्षात्कारतक समस्त उपलब्धियाँ गुरु-ज्ञानसे ही सम्भव हैं।

गगन मँडल में ऊँधा कूवाँ तहाँ अमरित का बासा।
सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै निगुरा जाइ पियासा॥

(सबदी २३)

कबीर भी गुरु-महिमाका गान करते हुए कहते हैं कि साधनाका मार्ग कठिन है, पर गुरु-कृपासे मैं लक्ष्यतक अर्थात् ब्रह्मप्राप्तितक पहुँच गया।

कबीर मारग अगम है, सब मुनि जन बैठे थाकि।
तहाँ कबीर चलि गया, गहि सतगुर की साषि॥

(सूषिम मारग कौ अंग ९)

गोरखनाथजी कहते हैं—

प्रथमें प्रणऊँ गुर के पाया। जिन मोहिं आतमब्रह्म लखाया॥
सतगुर सबद कह्या तैं बूझ्या। तृहूँ लोक दीपक मनि सूझ्या॥

(प्राणसकली १)

गोरखनाथजी कहते हैं कि सबसे पहले मैं अपने गुरुके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने कृपापूर्वक मुझे अपने ही शरीरमें विद्यमान आत्मब्रह्म परमशिवका दर्शन कराया। सद्गुरुके शब्दसे मुझे दीपकमणि प्राप्त हुई और तीनों लोक मेरे ज्ञान-नेत्रमें प्रकाशित हो गये।

कबीर इसे स्वीकारते हैं—

सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥

(गुरुदेव कौ अंग ३)

गोरखनाथजी ईश्वरकी व्याप्ति कण-कणमें मानते हैं। वे परमात्माको सर्वव्यापक कहते हैं, पर इसका विवेक भी सद्गुरुकी कृपासे ही मिलता है।

बास सहेती सब जग बास्या, स्वाद सहेता मीठा।
साँच कहूँ तौ सतगुर मानै, रूप सहेता दीठा॥

(सबदी २५)

कबीरके ब्रह्म भी घट-घटवासी हैं, पर अज्ञानताके कारण लोग भगवान्‌को इधर-उधर ढूँढ़ते-फिरते हैं।

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहिं।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनियाँ देखे नाहिं॥

(कस्तूरियाँ मृग कौ अंग १)

कबीर गोरखनाथजीके हठयोगसे प्रभावित थे। वे भी शून्य शिखरमें ब्रह्मसे मिलनके सिद्धान्तको स्वीकार करते हैं। गोरखनाथजीने शून्यमण्डलमें अमृतरसके पानकी बात कही है। उन्होंने कहा है कि सहस्रारमें अमृतका निर्झर झरता है, जिसका पान साधक करते हैं।

उलटंत नादं पलटतं ब्यन्द, बाई के घर चीन्हसि ज्यंद।
सुनि मंडल तहाँ नीझर झरिया, चंद सुरजि ले उनमनि चरिया॥

(सबदी ५५)

कबीर कहते हैं—

गंग जमुन कै अन्तरै, सहज सुन्नि लौं घाट।
तहाँ कबीरै मठ रचा, मुनि जन जोवैं बाट॥

(लै कौ अंग ३)

सायर नाहीं सीप बिन, स्वाति बूँद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिषर गढ़ माहिं॥

(परचा कौ अंग ८)

पंषि उड़ाणीं गगन कूँ, प्यंड रह्या परदेस।
पाँणी पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देस॥

(परचा कौ अंग २०)

गोरखनाथजीने कहा है कि ब्रह्मरन्ध्रमें एक ऐसा कुआँ है, जिसका मुख औंधा है, इसमें अमृतका वास है। सगुरे साधक इसका पान करते हैं।

गगन मँडल में ऊँधा कूवाँ तहाँ अमरित का बासा।
सगुरा होइ सु भरि भरि पीवै निगुरा जाइ पियासा॥

(सबदी २३)

कबीरका कथन है कि आकाशमें औंधा मुख किये सहस्रार-चक्ररूपी कुआँ है। इस कुएँकी पनिहारिन मूलाधारमें अवस्थित कुण्डलिनी है। साधक अपनी कुण्डलिनीको मूलाधार चक्रसे झरनेवाले अमृतका पान करा सकता है। ब्रह्मरन्ध्रसे टपकनेवाला चन्द्रस्थानका अमृत योगी अपनी जिह्वाको उस रन्ध्रपर लाकर पीता है। उस अमृतका स्वाद लेनेवाला योगी ही हंस है।

आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पाणी को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥

(परचा कौ अंग ४५)

गोरखनाथजी मरणको मीठा कहते हैं। वे कहते हैं कि हे योगी! मरो, जीवन्मुक्त अवस्थामें स्थित होकर अमृतपदमें प्रतिष्ठित हो जाना मधुर, मीठा है, इसका वर्णन नहीं हो सकता। वास्तवमें जिसने सांसारिक विषयोंसे अपनेको विरक्त कर लिया, उसके लिये मरण मीठा हो जाता है। गोरखनाथजी कहते हैं—

मरौ वे जोगी, मरौ, मरण है मीठा।
तिस मरणीं मरौ, जिस मरणीं गोरष मरि दीठा॥

(सबदी २६)

कबीर कहते हैं—

जिन मरने से जग डरे, सो मेरे आनंद।
कब मरिहूँ कब देखिहूँ, पूरण परमानंद॥

(सूरा तन कौ अंग १३)

गोरखनाथजीने पिण्डमें ब्रह्माण्डका विचार व्यक्त किया है। ***'जीव सीव संगे बासा'*** शरीरमें शिवका

निवास है। कबीरने इसे स्वीकार किया है—

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत कथा गियानी॥

गोरखनाथजीने कथनी-करनीकी एकरूपतापर बल दिया है। कहना सरल पर, उसका आचरण कठिन है। गोस्वामीजीने भी ***'पर उपदेस कुसल बहुतेरे'*** कहा है। प्रवचन करना सरल है पर, विचारोंपर खरा उतरना कठिन है। गोरखनाथजी कहते हैं—

कहणि सुहेली रहणि दुहेली कहणि रहणि बिन थोथी।
पढ्या गुंण्या सूबा बिलाई षाया पंडित के हाथि रह गई पोथी॥

(सबदी ११९)

कथनी है पर, करनी नहीं है तो जीवन व्यर्थ है। पिंजड़ेमें बन्द तोता ज्ञानकी बात करता है पर, सावधान न रहनेपर पिंजड़ेका द्वार खुलते ही बिल्लीका ग्रास बन जाता है। उसी प्रकार पण्डितके हाथमें ज्ञानकी पोथी पड़ी रहती है, वह शब्दोंका उच्चारण करता रहता है, पर उसके अनुरूप आचरण न करनेके कारण वह कालका ग्रास बन जाता है।

आगे गोरखनाथजी कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति बिना गुड़के खाये ही उसके मीठे स्वादकी प्रशंसा करता है तो वह दूसरोंको धोखा देता है। यह बात तो ऐसी ही है जैसे कोई हींग खाकर कपूरकी गन्धकी बात करे। उसी प्रकार सांसारिक बन्धनमें आसक्त विषयी पुरुष ब्रह्मज्ञानकी बात करे, तो उसका कथन प्रपंचमात्र है।

कहणि सुहेली रहणि दुहेली बिन षाया गुड़ मीठा।
खाई हींग कपूर बषांणै गोरष कहै सब झूठा॥

(सबदी १२०)

कबीर कहते हैं—

कथनी मीठी खाँड़ सी, कथनी बिष की लोय।
कथनी तजि करनी करै, बिष से अमरित होय॥

जो व्यक्ति अपनी कथनीके अनुसार आचरण करता है, परब्रह्म उसके पास ही रहता है और वह जीवको पलभरमें प्रसन्न कर देता है।

जैसी मुख तैं नीकसै, तैसी चालै चाल।
पारब्रह्म नेड़ा रहे, पल मैं करै निहाल॥

(करणीं बिना कथणीं कौ अंग ३)

गोरखनाथजीकी तरह ही कबीरने भी बाह्याडम्बरोंका विरोध किया है। मात्र वेश धारण करके कोई योगी या साधु नहीं हो सकता, जबतक कि उसे ब्रह्मज्ञान न हो। गोरखनाथजीने ज्ञानरहित योगियोंको पाखण्डी कहा है।

साँग का पूरा ग्यान का ऊरा। पेट का तूटा डिंभ का सूरा॥
बदंत गोरषनाथ न पाया जोग। करि पाषंड रिझाया लोग॥

(सबदी १९०)

कबीर कहते हैं—

साधू भया तो क्या भया, माला पहिरी चारि।
बाहर भेष बनाइया, भीतरि भरी अँगारि॥
भक्त बिरक्त लोभ मन ठाना। सोना पहिरि लजावै बाना॥
घोरी घोरा कीन्ह बटोरा। गाँव पाय जस चले करोरा॥

स्त्री-आसक्ति मनुष्यको पथभ्रष्ट कर देती है। साधनामें नारी-संगति बाधा उत्पन्न करती है। गोरखनाथजी साधकोंको नारी-संगतिसे दूर रहनेके लिये कहते हैं।

कदै न सोभै सुंदरी सनकादिक के साथि।
जब तब कलंक लगायसी काली हाँडी हाथि॥

(सबदी २५०)

कबीर कहते हैं कि जिस पुरुषके साथ नारीका संसर्ग होता है, वह उसको भक्ति, मुक्ति और ज्ञान तीनोंसे वंचित कर देती है। नारीके संसर्गमें रहनेवाला कोई भी पुरुष इन तीनोंके क्षेत्रमें प्रवेश नहीं कर सकता है।

नारि नसावै तीनि सुख जा नर पासैं होइ।
भगति मुकति निज ग्यान मैं, पैसि न सकई कोइ॥

(कामी नर कौ अंग १०)

गोरखनाथजी सहज रहनीपर बल देते हैं। सांसारिक बुराइयोंका त्याग कर मनुष्य सहज रहनीको अपना सकता है। गोरखनाथजी कहते हैं—

हबकि न बोलिबा, ढबकि न चालिबा, धीरै धारिबा पावँ।
गरब न करिबा, सहजैं रहिबा, भणत गोरष रावँ॥

(सबदी २७)

कबीर कहते हैं विषयोंका परित्याग सहज रहनीके लिये आवश्यक है।

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै बिषया तजी, सहज कहीं जे सोइ॥

(सहज कौ अंग १)

जीवात्मा-परमात्मामें अभेद बताते हुए गोरखनाथजी कहते हैं कि जीव-हिंसा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सबमें परमात्माका वास है।

जीव सीव संगे बासा। बधि न षाइबा रुध्र मासा॥
हंस घात न करिबा गोतं। कथंत गोरष निहारि पोतं॥

(सबदी २२६)

कबीर कहते हैं—

बकरी पाती खात है, ताकी खींची खाल।
जो नर बकरी खात है, ताको कवन हवाल॥
पापी पूजा बैसि करि, भषै माँस मद दोइ।
तिनकी देख्या मुकति नहीं, कोटि नरक फल होइ॥

(साँच कौ अंग १३)

गोरखनाथजीने मात्र पुस्तकीय ज्ञानको अज्ञान ही माना है, क्योंकि पुस्तकीय ज्ञानसे ईश्वरका ज्ञान नहीं हो सकता।

पढ़ि पढ़ि पढ़ि केता मुवा, कथि कथि कथि कहा कीन्ह।
बढ़ि बढ़ि बढ़ि बहु घट गया, पारब्रह्म नहीं चीन्ह॥

(सबदी २४८)

कबीर कहते हैं—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।
एकै आषिर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ॥

(कथणीं बिना करणीं कौ अंग ४)

पोथीके ज्ञानको कबीरने तीतरका ज्ञान कहा है—

पण्डित केरी पोथिया, ज्यों तीतरका ग्यान।
औरन सगुन बतावहीं, आपन फंद न जान॥

शरीरस्थ ईश्वरको छोड़कर लोग उन्हें न जाने कहाँ-कहाँ ढूँढ़ते-फिरते हैं, पर अनेक प्रयत्न करनेपर भी उन्हें निराशा ही हाथ लगती है। जिसकी उन्हें खोज है ***'सो तो है घट माहिं'*** वह तो उनके अन्दर ही है, फिर बाहर वह कहाँ मिलेगा। संसारमें नहीं, स्वयंमें ढूँढ़नेसे ईश्वरकी प्राप्ति होती है।

घटि घटि गोरष फिरै निरूता। को घट जागे को घट सूता॥
घटि घटि गोरष घटि घटि मीन। आपा परचै गुरमुषि चीन्ह॥

(सबदी ३८)

गोरखनाथजी कहते हैं—

हिंदू ध्यावै देहुरा मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परमपद जहाँ देहुरा न मसीत॥

(सबदी ६८)

कबीरने भी अपने ब्रह्मको घट-घटवासी माना है। वे कहते हैं कि उनके भाग्यकी सराहना करनी चाहिये, जिनके हृदयमें वे प्रकट हो जाते हैं।

सब घटि मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
भाग तिन्हौं का हे सखी, जिहि घटि परगट होय॥

(साध साषीभूत कौ अंग १८)

गुरु गोरखनाथजीने साधनामें उन्मनी अवस्थाके महत्त्वको प्रतिपादित किया है। यह वह अवस्था है, जहाँ साधक पहुँचकर, समाधिस्थ होकर अजर-अमर हो जाता है। इस स्थितिको प्राप्त साधक निरन्तर अमृत-रसका पान किया करता है। गोरखनाथजी कहते हैं— ***'उनमनि लागा होइ अनंद।'***

कबीरने 'उन्मनी' अवस्थाका अपने काव्यमें बार-बार वर्णन किया है।

उनमनि ध्यान घट भीतर पाया। अवधू मेरा मन मतिवारा॥
उनमनि चढ़ा गगन रस पीवै। त्रिभुवन भया उजियारा॥

उन्मनी अवस्थाको प्राप्त करनेके लिये साधक त्रिकुटीपर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और बाह्य जगत्‌से विरक्त हो जाता है। इस अवस्थाको प्राप्त करके साधक द्वैतभाव भूलकर अद्वैतावस्थाको प्राप्त हो जाता है। कबीर कहते हैं— ***'उनमनि मनुआँ सुन्य समाना, दुबिधा दुर्गति भागी।'***

'नाम-स्मरण' और 'सुरति' शब्द-योगसे सम्बन्धित कबीरकी रचनाओंमें कुण्डलिनी-योगकी चर्चा मिलती है।

सुरति समांणी निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खुले स्यंभ दुआर॥

(परचा कौ अंग २२)

अजपा-जपकी साधनापर गोरखनाथजी बहुत बल देते हैं। इसके लिये मनकी एकाग्रताके लिये कहते हैं। कबीर-दासजीने भी अजपा-जपके महत्त्वको रेखांकित किया है।

सुरति समाँणी निरति मैं, अजपा माँ है जाप।
लेख समाँणा अलेख मैं, मैं यूँ आपा माँ हैं आप॥

(परचा कौ अंग २३)

'अनहद नाद' सुनायी पड़नेकी स्थितिका जो वर्णन गोरखनाथजीने किया है, उसका समर्थन कबीरने भी किया है। गोरखनाथजी कहते हैं—

थोड़ा बोलै थोड़ा षाइ। तिस घटि पवना रहै समाइ॥
गगन मँडल मैं अनहद बाजै। प्यंड पड़ै तौ सतगुर लाजै॥

(सबदी ३२)

योगसिद्ध पुरुष अनहद नादके श्रवणमें पूर्ण तन्मय होकर अपनी-अपनी योगसाधनामें तत्पर रहता है। वह प्राणवायुका संयमकर सुषुम्नामार्गसे प्रस्फुटित नादका श्रवण करता है। नादानुसन्धानमें कान, नेत्र, नासिकारन्ध्र तथा मुख आदिको निरुद्धकर इन्द्रियों और मनको एकाग्र किया जाता है।

नाद हमारे बाबै कवन, नाद बजाया तूटै पवन।
अनहद सबद बाजता रहै, सिध संकेत श्रीगोरष करै॥

(सबदी १०६)

कबीर भी कहते हैं कि ध्यान लगानेसे अनिर्वचनीय ब्रह्मकी अनुभूति होती है, अनहदनाद सुनायी देता है और अमृतका झरना प्रवाहित होने लगता है।

अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
अबिगति अन्तरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान॥

(परचा कौ अंग ४४)

'नाद' और 'बिन्दु' की साधनाका वर्णन गोरखनाथजीने किया है, जो ब्रह्मचर्यकी साधनाका दूसरा नाम है। कबीरने भी दोनोंकी साधनाके द्वारा परमात्मतत्त्वकी अनुभूतिका वर्णन किया है। 'निरंजन' शब्द ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित नादरूपी निर्गुण ब्रह्मका बोधक है। गोरखनाथजीने निरंजनको सर्वव्यापक और अस्थूल बताया है। कबीरने भी 'निरंजन' शब्दका प्रयोग परमतत्त्वके लिये किया है। गोरखनाथजीकी 'अमरवारुणी' को कबीरने 'राम रसाइन' कहा है।

राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, माँगै सीस कलाल॥

(रस कौ अंग २)

गोरखनाथजीने मायाको सर्पिणी कहा है, जो निरन्तर संसारको खा रही है। कबीरने मायाको 'महाठगिनि' कहा है। कबीर मायाको बहुत प्रभावशालिनी मानते हैं।

कबीर माया मोहनी, मोहे जाण सुजाण।
भागा ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बाण॥

(सूषिम जनम कौ अंग ९)

माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।
आसा त्रिस्ना ना मुई, यौं कहि गया दास कबीर॥

(सूषिम जनम कौ अंग ११)

मन बहुत चंचल है। मनको इन्द्रियोंके विषयोंसे मोड़कर आत्मचिन्तनमें प्रवृत्त करना चाहिये। वे कहते हैं कि मनका निग्रह करना चाहिये।

अवधू यो मन जात है याही तै सब जाँणि।
मन मकड़ी का ताग ज्यूँ उलटि अपूठौं आँणि॥

(सबदी २३४)

कबीर मनकी चंचलताके सन्दर्भमें कहते हैं कि मनरूपी पंछी प्रयत्न करके आकाशतक—सहस्रारतक पहुँच गया था, पर मायाके प्रभावसे वह नीचे गिर पड़ा और मेरा मन फिर मायाके वशीभूत हो गया है।

कबीर मन पंषी भया, बहु तक चढ़्या अकास।
उहाँ ही तैं गिरि पड़्या, मन माया के पास॥

(मन कौ अंग २५)

कबीर मनके निग्रहकी भी बात करते हैं—

काया कसूँ कमाँण ज्यूँ, पंच तत्त करि बाँण।
मारौ तौ मन मिरिग कौ, नहीं तौ मिथ्या जाँण॥

(मन कौ अंग ३०)

उलटबाँसियोंमें कबीरने गोरखनाथजीका अनुकरण किया है। गोरखनाथजीकी उलटबाँसियोंकी अनेक पंक्तियाँ कबीर-काव्यमें ज्यों-की-त्यों मिलती हैं। गोरखनाथजीका ***'उलटि पवन पर चक्र बेधिया'*** वाक्य कबीरकी बानियोंमें अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। गोरखनाथजीके ***'नीझर झरिया'*** वाक्यांशका कबीरने अनेक स्थलोंपर प्रयोग किया है। गोरखनाथजी कहते हैं—

डूँगर मंछा जलि सुसा पाँणी में दो लागा।

कबीर कहते हैं कि अन्त:करणमें ज्ञानाग्नि प्रकट होनेपर इन्द्रियोंके विषय नष्ट हो गये और साधक जीव सांसारिकतासे ऊपर उठकर ब्रह्ममें लीन हो गया। योगसाधनाके सम्बन्धमें कबीरका कथन है कि मूलाधार-चक्रमें कुण्डलिनीके जागरणसे इडा-पिंगला नाड़ियोंसे

उसका विच्छेद हो गया और कुण्डलिनी सहस्रार कमलपर पहुँच गयी।

समंदर लागी आगि, नदियाँ जल कोइला भई।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषाँ चढ़ि गई॥

(ग्यान बिरह कौ अंग १०)

गोरखनाथजीने काम, क्रोध, लोभको साधनाके मार्गका अवरोध माना है।

नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू दिढ़ करि राषहु चीया।
काम क्रोध अहंकार निबारौ तौ सबै दिसंतर कीया॥

कबीर भी कहते हैं कि यदि भगवान्‌को प्राप्त करना हँसी-खेल होता तो कौन त्यागमय कठोर साधनाका जीवन व्यतीत करता। जो व्यक्ति काम, क्रोध और तृष्णाका सर्वथा त्याग कर देता है, उसको ईश्वरकी प्राप्ति होती है।

हाँसी खेलौं हरि मिलैं, कौण सहै षरसान।
काम क्रोध त्रिष्णाँ तजै, ताहि मिलै भगवान॥

(बिरह कौ अंग ३०)

गोरखनाथजीने अहंकारका त्याग करनेके लिये कहा है। अहंकार व्यक्तिको संकुचित कर देता है और तब उसका आत्म-विस्तार नहीं हो पाता। गोरखनाथजी कहते हैं—

आपा भाँजिबा सतगुर षोजिबा जोगपंथ न करिबा हेला।
फिरि फिरि मनिषा जनम न पायबा करि लै सिध पुरित सूँ मेला॥

(सबदी २०३)

कबीर कहते हैं कि हे प्राणी! तू अहंकारका त्याग कर दे, मैं और मेरा-मेरी मत कर। यह मेरेपनका भाव, नाशका मुख्य कारण है। अहंकारभाव जीवके पैरोंका बन्धन है और गलेमें पड़े हुए फाँसीके फन्देके समान है।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैंषड़ा, मेरी गल की फास॥

(चितावणी कौ अंग ६१)

गोरखनाथजीने सत्य और शीलको मानव-जीवनके लिये आवश्यक बताया है। वे कहते हैं, 'मैं पाँच प्रकारका स्नान नित्य करता हूँ। ये स्नान सत्य, शील, गुरूपदेश, स्वाध्याय और दया हैं।'

सत्य सीलं दोय असनान त्रितीये गुरु बायक।
चत्रथे षीषा असनान पंचमे दया असनान॥

(सबदी २५८)

कबीरने कहा है—

जहाँ दया तहाँ धरम है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहाँ छमा तहाँ आप॥

आशा और संशय दोनों ही अत्यन्त भयंकर रोग हैं। जागतिक क्षणभंगुर पदार्थोंकी इच्छा आपदाका कारण है और संसारके असत् रूपको सत् मान लेना ही संशय है। संशयसे मन विषादग्रस्त हो जाता है और साधकको शोक होता है। गोरखनाथजी कहते हैं—

जे आसा तो आपदा जे संसा ते सोग।
गुर मुषि बिना न भाजसी ये दून्यो बड़ रोग॥

(सबदी २३५)

कबीरने भी स्पष्ट कहा है कि संशयने समस्त जगत्‌को खा लिया है और संशयको कोई भी नष्ट नहीं कर पाया है, पर गुरु-कृपासे इसका नाश सम्भव है।

संसै षाया सकल जुग, संसा किनहुँ न खद्ध।
जे बेधे गुर अष्षिरा, तिन संसा चुणि चुणि खद्ध॥

(गुरुदेव कौ अंग २२)

उपर्युक्त विवरणके आधारपर यह स्पष्ट है कि गोरखनाथजीकी 'सबदी' को कबीरने 'साखी' का आधार बनाया। गोरखनाथजीकी सबदीके अधिकांश शब्दोंका प्रयोग कबीरने ज्यों-का-त्यों किया है। कबीरदासजीकी भाषापर गोरखनाथजीका अत्यधिक प्रभाव दिखायी पड़ता है। गोरखनाथजीकी सबदी और कबीरदासकी साखीके छन्दोंमें भाषा एवं भाव दोनों दृष्टियोंसे समानता दिखलायी पड़ती है। कबीरदासपर गोरखनाथजीकी साधना हठयोगका बहुत अधिक प्रभाव है। गोरखनाथजी और सन्त कबीर दोनों अपने युगके लोकोपदेशक हैं और लोकमें इनका व्यापक प्रभाव भी है। कबीरद्वारा बाह्याडम्बरोंका विरोध और सहज जीवन जीनेकी प्रेरणापर गोरखनाथजीका स्पष्ट प्रभाव है। आज भी गोरखनाथ और कबीरके उपदेश प्रेरणास्पद और प्रासंगिक हैं। पथभ्रष्ट मानवको सन्मार्ग और सन्मार्गीको लक्ष्यतक पहुँचानेमें इनके उपदेश ग्रहणीय हैं। मानव इनसे प्रेरणा प्राप्तकर अपने जीवनकी सार्थकताको सिद्ध करते हुए परमपुरुषार्थकी प्राप्ति कर सकता है और संसारके आवागमन अर्थात् जन्म-मरणके चक्रसे मुक्ति पा सकता है।

शिक्षा—विधिमुखसे तथा निषेधमुखसे

(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)

सिखानेके लिये प्रकृतिका कण-कण विद्यमान है, सीखनेवाला चाहिये। निरन्तर होता परिवर्तन हमें संसारकी नश्वरताका बोध कराता है। भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह, महारानी लक्ष्मीबाई, तुलसीदास, रैदास, कबीर, सूरदास, नरसी आदिका चरित्र देखकर, सुनकर हमें चाहिये कि बुराईको छोड़कर अच्छाईका अनुसरण करें। कुसंगको छोड़कर सत्संग करें। अन्याय-अनीतिको छोड़कर न्याय-नीतिसे चलें, अन्याय-अनीतिका प्रतीकार करें, चुप न बैठें। कहते हैं अन्याय करना पाप है तो अन्याय सहना महापाप है, परंतु अन्याय होते हुए देखकर चुप रह जाना—उसका विरोध न करना, घोरातिघोर महापाप है। आपको अपने मनकी बात बताते हैं—जब हम छोटे थे, घरवालोंके साथ रामलीला देखने गये। रामलीलामें श्रीविश्वामित्रजी महाराजके साथ श्रीराम-लक्ष्मणको देखा, बस मन अटक गया। उनके वस्त्रोंको, बोलनेके ढंगको देखते ही मनमें भाव जगा कि हमको भी ऐसा ही बनना है। ये तो पता नहीं कि उनके जैसे बने या कि नहीं बने, परंतु वेषभूषा एवं जीनेका ढंग उनके जैसा हो ही गया। सत्य तो यह है कि इन्सान जैसा होना चाहता है, एक-न-एक दिन वैसा हो ही जाता है। यह व्यक्तिकी तत्परता और लगनपर निर्भर करता है कि ये सफर कितना शीघ्र पूर्ण होगा अथवा कितनी देर लगेगी।

सम्भवतः हम सप्तमी कक्षामें पढ़ते थे, वहाँ हमारे एक अध्यापक थे, जिनकी शालीनता, योग्यता तथा व्यवहारोन्मुख सहयोगात्मक प्रवृत्तिके कारण उनका बहुत सम्मान होता था। एक दिन वे छुट्टीके उपरान्त विद्यालयसे अपने घर जा रहे थे, रास्तेमें एक सम्भ्रान्त घरका प्रौढ़ व्यक्ति मदिराके नशेमें बेहोश होकर नालीमें पड़ा था। उसके शरीरको कुत्ते चाट रहे थे। हमने भी वह दृश्य देखा और कुछ हँसी, कुछ घृणा, कुछ निन्दाका भाव जगा, समाधान कुछ हुआ नहीं। दिन गुजरा, रात बीती, अगले दिन विद्यालय गये, उन्हीं गुरुजीका कालांश (पीरियड) आया। उन्होंने दो शब्द प्रयोग किये, वे शब्द आज भी उनकी उसी गम्भीर और प्रेमरससे सराबोर ध्वनिमें हृदयमें संरक्षित है। उन्होंने कहा था, बच्चो! हमें शिक्षा दो प्रकारसे मिलती है—

१-अच्छे इन्सानके अच्छे कर्मसे, २-बुरे आदमीके बुरे कर्मसे। पहली बात तो समझमें आ ही जाती है, परंतु दूसरी बात समझमें नहीं आती। भाई! बुरा इन्सान क्या शिक्षा देगा? उससे क्या सीखें? बड़ा सीधा-सा ढंग उन्होंने बताया कि अच्छा इन्सान कुछ अच्छा कर्म करे तो हमें प्रेरणा लेनी चाहिये कि हम भी ऐसे ही अच्छे कर्म करें। जब बुरा इन्सान कोई समाजविरोधी अनैतिक कार्य करे तो उसे देखकर घृणा न करो, निन्दा न करो, उपहास मत उड़ाओ, अपितु उसको भी गुरु मानकर शिक्षा लो कि हम जीवनमें ऐसा कार्य कदापि नहीं करेंगे। बुरे इन्सानसे घृणा नहीं, बल्कि बुराईसे घृणा करो। जीवनमें विविध रंग, विविध ढंग, विविध संग, विविध जंगके पल आते हैं, समझदार वही है, जो संतुलन बनाये रखता है। राग-द्वेषमें, मित्र-शत्रुमें, लाभ-हानिमें, जय-पराजयमें, जन्म-मरणके सन्देशमें, सुख-दुःखमें, सर्दी-गर्मीमें, अनुकूलता-प्रतिकूलतामें, यश-अपयशमें, भवन-वनमें, सुस्वादु-नीरस भोजनमें—कहाँतक कहें, जीवनके प्रत्येक कदमपर सन्तुलन अपेक्षित है। सन्तुलन शब्द बहुत छोटा है, परंतु इसी एक शब्दमें समग्र शास्त्रोंका नैतिक तत्त्व, जीवन जीनेकी कला, जीवन-दर्शन भरा हुआ है। जिसने सन्तुलन बना लिया, उसने जीवन

बना लिया। किसी भी स्थितिमें वह प्रौढ़ व्यक्ति बिखरता नहीं, तमाशा नहीं बनता।

हम लोग अपने जीवनका बेशकीमती समय व्यर्थकी चर्चा, व्यर्थकी चिन्ता, व्यर्थके विवादोंमें गवाँ देते हैं, जबकि हमको आत्मचिन्तन करके अपनी स्थितिका आकलन करना चाहिये कि मैं क्या हूँ? मेरी अच्छाई-बुराई क्या है? मेरी शक्ति तथा मेरी कमजोरी क्या है? तदनन्तर उसीके अनुसार कार्य करना चाहिये, जिससे कि हमें सफलताओंकी प्राप्तिमें सहजता हो। जब जीवन सुनियोजित हो, तब सफलताकी सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। हमको लगता है कि जगत्‌में जो कुछ भी है, अच्छा या बुरा, सबसे कुछ-न-कुछ सीखा जा सकता है। आप सोचो! क्या व्यभिचार-परायणा स्वेच्छाचारिणी कोई वेश्या भी कुछ शिक्षा दे सकती है? नहीं न! क्योंकि उसकी शिक्षा, उसके संस्कार, उसकी संगति तो हमको पतनकी ओर ले जा सकती है, दुश्चरित्रताके दलदलमें फँसा सकती है, यही बात है न। परंतु भारतीय ऋषि-परम्पराके देदीप्यमान नक्षत्र, अद्वैतनिष्ठाके प्रतिमान, साधुताकी कसौटी, परमानन्दकी मस्तीके समुद्रमें सर्वदा निमग्न रहनेवाले अत्रिनन्दन दत्तात्रेयजी महाराजने अपने जीवनमें २४ गुरुओंकी चर्चा की है। आश्चर्य यह है कि ना तो उन्होंने किसी गुरुसे दीक्षा ली और न ही किसी गुरुको दक्षिणा दी। दीक्षा और दक्षिणाकी व्यावहारिक औपचारिकताओंसे रहित होकर उन २४ गुरुओंसे शिक्षा भी ली, उनको गुरु भी माना, परंतु गुरुओंको खबरतक नहीं। (हम गुरुजीकी नजरमें आना चाहते हैं, उनकी लिस्टमें नाम चाहते हैं, परंतु उनकी शिक्षाओंपर नहीं चलते, यही विडम्बना है)। दत्तात्रेयजीने कहा कि मैं एक बार भ्रमण करता हुआ मिथिला पहुँच गया, रात्रिके समय बाजारमें एक स्थानपर विश्रामहेतु बैठ गया। सारी दुनिया चैनकी नींद सो रही थी। वहींपर एक सुन्दर-से भवनमें शृंगार करके एक सुन्दरी आने-जानेवालोंको देखती, बार-बार अन्दर जाती, बाहर आती। बेचैनीमें जागते हुए पूरी रात गुजर गयी, परंतु कोई ग्राहक नहीं आया। मैंने पता किया तो जाना कि यह सर्वोत्तमा सुन्दरी मिथिलाकी वेश्या पिंगला है। प्रातःकाल ४ बजे मन्दिरोंकी घंटियाँ बज उठीं, शंखकी मांगलिक ध्वनिसे दिशाएँ गूँजने लगीं, मन्त्रोच्चारण तथा प्रार्थनाओंके प्यारे स्वर हवाके साथ तैरते हुए दूरतक अठखेलियाँ करने लगे और उधर पिंगलाने शृंगार फेंक दिया, बेचैनी और निराशाकी जगह मुखमण्डलपर प्रसन्नतामिश्रित सौम्यता, निश्चिन्तता, शान्तिकी प्रभाने अड्डा जमा लिया। सहसा पिंगला बोल उठी—छिः छिः, मेरा सारा जीवन नश्वर संसारके, नश्वर भोगोंकी पूर्तिके लिये, नश्वर प्राणियोंकी ओर आशाभरी नजरोंसे निहारते बीत गया। मैंने कभी अपने अन्तर्मनमें बैठे प्राणधन प्रियतमकी ओर देखातक नहीं। हे अभागिनी पिंगले! तू जाग जा, वासनाकी गन्दी नालीको छोड़ उपासनाकी गंगामें अवगाहन कर। ***अब लौं नसानी अब ना नसैहौं***—अबतक जीवन व्यर्थ गया, अब एक पल भी व्यर्थ नहीं करना। संसारकी आशा दुःख देती है और संसारसे निराश होनेमें ही सुख है।

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।

पिंगला वेश्याकी इस बातको सुनकर दत्तात्रेयजीने पिंगलाको मन-ही-मन नमन करके गुरु मान लिया और मनमें ठान लिया कि अब किसीसे आशा या अपेक्षा नहीं करना, क्योंकि अपेक्षा ही उपेक्षा कराती है। आप किसीसे अपेक्षा न करो तो कोई उपेक्षा कर ही नहीं सकता। सन्तने वेश्यासे भी कुछ सीख लिया और एक हम हैं कि सन्तोंसे भी कुछ सीखनेको तैयार नहीं। पूरा जगत् हमारा गुरु है, हमें सावधानीपूर्वक अच्छाई-बुराईका निर्धारण करके जीवनको पावन बनाना है।

बच्चे क्या पढ़ें ?

(डॉ० श्रीरामशंकरजी द्विवेदी)

आज सर्वाधिक उपेक्षित बचपन है। बालक और किशोरोंके लिये क्या लिखा जाय, इसकी परिपाटी ही समाप्त होती जा रही है। बड़े लेखक तरह-तरहके विमर्शोंमें उलझे हुए हैं। एक बार एक बड़े साहित्यकारसे यह पूछा जानेपर कि आप बच्चोंके लिये कुछ क्यों नहीं लिखते हैं, वे साहित्यकार कुछ ईमानदार थे, इसलिये सही बात कह बैठे—भाई! मैं तो बच्चोंके लिये नहीं लिख सकता। कारण, बच्चोंके लिये लिखना बहुत कठिन है।

पर देशी भाषाओंका साहित्य ऐसा नहीं है। बांग्ला भाषाको ही ले लीजिये। रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे लेकर आजतक ऐसा कोई भी चर्चित, ख्यात, बड़ा साहित्यकार नहीं है, जो बच्चों, किशोरोंके लिये न लिखता हो। दक्षिणारंजन बसु से लेकर उपेन्द्रकिशोरतक एक-से-एक बढ़िया रूपक, परियोंकी कहानियाँ, हास्यपूर्ण तुकबन्दियाँ, पहेलियाँ बांग्ला साहित्यकी शोभा बढ़ा रही हैं। एक बार एक बांग्ला प्रकाशकने एक प्रश्नके उत्तरमें कहा था कि हिन्दी का प्रकाशक सरकारी खरीदके लिये पुस्तकें छापता है, हम लोग पाठकोंके लिये पुस्तकें छापते हैं। इसलिये बच्चों, किशोरों, सयाने बालकोंके लिये लिखकर बांग्लाके बड़े लेखक उनमें पठन-रुचिके साथ-साथ पढ़नेके संस्कार भी डालना चाहते हैं। बांग्लामें साहित्य और पुस्तकोंका संसार सिर्फ साहित्यकारों, लेखकों और प्रकाशकोंतक सीमित नहीं है, यह उनके रसोईघरोंतक प्रवेश कर गया है। कभी-कभी एक ही परिवारमें पिताका अलग, माँका अलग और दादा-दादीका अलग पुस्तकालय होता है।

बंगालमें यह परम्परा है कि 'छेले मूलानो छड़ा' पढ़नेको देनेके पहले वे उन्हें रामायण और महाभारत पढ़नेको देते हैं। इस सम्बन्धमें एक बड़ा रोचक संस्मरण 'शनिवारेर चिठि'के सम्पादक सजनीकान्त बाबूने अपनी आत्मकथा 'आत्मस्मृति' में दिया है। कौन थे सजनीकान्त बाबू? सजनीकान्त बाबू बांग्लाके विख्यात मासिक 'शनिवारेर चिठि'के सम्पादक थे। ये बड़े कट्टर और सनातनी हिन्दू थे। आलोचना करनेमें इन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुरको भी नहीं छोड़ा था। इनका जन्म २५ अगस्त, १९०० ई०को और प्रयाण ११ फरवरी, १९६१ ई० को हुआ था। अपने बचपनकी कथा सुनाते-सुनाते इन्होंने लिखा है कि कोई भी मनुष्य वृन्तहीन पुष्पकी तरह अपने-आप विकसित नहीं होता है। उसके विकासके लिये परिवेशका प्रभाव और राष्ट्रीय जीवनके संस्कार, जैसे वृक्षके लिये मिट्टी और जल उसी तरह आवश्यक होते हैं।

आजकल देखनेमें आता है कि बारहखड़ी और सुकुमार रायके अबोल-तबोल—शिशु पाठ्य-जैसी पुस्तकोंसे बच्चोंके कल्पना-लोकमें विहार करनेवाले जीवनकी शुरुआत होती है। इन पुस्तकोंसे छन्द और सुरके संस्कार तो पड़ जाते हैं, किंतु जीवनकी जिस पुरातन धारामें बहते हुए हम आ रहे हैं, उसका इससे कोई सन्धान नहीं मिलता है। जो महान् आदर्श और विराट् चरित्र भारतवर्षके मनुष्योंके चरित्रका गठन आदिकालसे ही करता आ रहा है, शरीरके रक्त-मांसकी तरह, जो हमारे राष्ट्रीय चरित्रमें ओतप्रोत है, उसे छोड़कर कोई भी शिशु देशका सच्चा मनुष्य नहीं हो सकता है।

उन्होंने लिखा है—मैं यहाँ भारतीय ऋषियोंद्वारा वर्णित वेद-वेदान्त-उपनिषदोंकी बात नहीं कर रहा हूँ। वेद-वेदान्त-उपनिषदोंके सारभूत अंशको निचोड़कर जिन दो थालियोंमें, सर्वसाधारणके भोजनके लिये परोसा गया है, उन दो ग्रन्थों—रामायण और महाभारतकी बात कर रहा हूँ। यही दो ग्रन्थ स्थान और कालभेदसे देश और कालके अनुसार युगोपयोगी मानस आहारके रूपमें परिणत हो गये हैं। महाकवि वाल्मीकिकी रामायण बांग्लामें कृत्तिवासी रामायण हो गयी है और पछाँहमें तुलसीदासकी रामायण। बांग्लामें वेदव्यासके महाभारतके सर्वाधिक जनप्रिय प्रस्तुतिकर्ता हो गये हैं काशीरामदास।

सजनीकान्त बाबूके बचपनकी एक घटना है। ग्रीष्म अथवा पूजाकी छुट्टियोंमें उनके एक अपरिचित बड़े दादा मालदहमें छुट्टियाँ बिताने बाँकुड़ासे आये। वे सभीके लिये कोई-न-कोई उपहार लाये थे। सजनीकान्तके

भाग्यमें पड़ी एक खण्ड 'सरल कृत्तिवास रामायण'। इसका सम्पादन किया था कविभूषण योगीन्द्रनाथ वसु, बी०ए० ने। सजनीकान्त डरते-डरते उनके पास गये। रामायणका वह किशोर संस्करण अनेक चित्रोंसे सुसज्जित था। पुस्तक हाथमें देते हुए बड़े दादा उनसे बोले—अगर तुमने इसे अच्छी तरहसे पढ़ लिया, तो अगली छुट्टियोंमें तुम्हें काशीरामदासकी महाभारत पुरस्कारमें मिलेगी। प्रफुल्लित होकर पुस्तक लेकर वे माँके पास जाकर बैठ गये। पन्ने उलटते-उलटते ये पंक्तियाँ दिखायी पड़ीं—

'अमृत-मधुर एई सीताराम-लीला।
शुनिले पाषाण गले, जले भासे शिला॥'

सजनीकान्त बाबूने लिखा है कि अल्पकालमें ही मैंने सप्तकाण्ड रामायण शेष कर डाली और वह मेरे मर्मस्थलमें इस तरह समा गयी कि छह मास बीतते-न-बीतते पुस्तक हाथमें बिना लिये ही—

गोलोक बैकुण्ठपुरी सवार ऊपर।
लक्ष्मीसह तथाय वैसेन गदाधर॥
मने-मने प्रभुर होलो अभिलाष।
एक अंश चार अंशे होइते प्रकाश॥
श्रीराम, भरत, आर शत्रुघ्न, लक्ष्मण।
एक अंशे चारि अंशे हेला नारायण॥

यहाँसे आरम्भ करके 'एत दूरे समाप्त होलो सप्तकाण्ड' तक आवृत्ति करने लगा। इसका फल यह हुआ कि यथासमय मुझे काशीरामदासका महाभारत ग्रन्थ भी उपहारमें मिल गया। इन दोनों ग्रन्थोंके पाठसे मैंने रामायण और महाभारतकी पूरी कहानी ही आयत्त नहीं कर ली, वरन् प्राचीन पयार, लघु त्रिपदी और दीर्घ त्रिपदी छन्दोंपर भी मेरा दखल हो गया। दूसरा लाभ यह हुआ कि अत्यन्त बाल्यकालसे ही मेरे मनका अभिधानकोश बहुशब्द-सम्पदासे समृद्ध हो उठा। यह तो हुआ गौण लाभ, मुख्य लाभ यह हुआ कि जीवनके जटिल, दुर्गम पथपर चलते-चलते जहाँ भी अप्रत्याशित रूपसे समस्याएँ आकर मेरा पथ-रोध कर लेती थीं, वहींपर समाधानका इंगित भी इन्हीं रामायण-महाभारतके विभिन्न चरित्रोंसे मैं पाने लगा। यह कितना बड़ा लाभ हुआ, इसे लिखकर नहीं समझाया जा सकता है, आज भी इसका अनुभव मैं अपने मर्म-मर्ममें कर रहा हूँ।

सजनीकान्त बाबूने लिखा है, यह अनुभूति रवीन्द्रनाथने ही मेरे मनमें संचारित कर दी थी। 'सरल कृत्तिवास'का सर्वप्रथम प्रकाशन १९०७ ई० में हुआ था। इसी वर्ष यह मेरे हाथमें आ गयी थी। इसकी भूमिका लिखी थी रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने। उनकी सभी बातें मैं समझ गया था—ऐसा नहीं है। फिर भी उनकी कई बातें मेरे मनमें गुँथ गयी थीं। ऊपर रामायणके जिस पयार छन्दका मैंने उदाहरण दिया, वैसे ही रवीन्द्रनाथकी भूमिकाकी निम्न बातें मैं आज भी स्मृतिसे दुहरा सकता हूँ—

'यही रामायण-महाभारत हमारे समस्त राष्ट्रीय मनके लिये खाद्य थे। यही दो महाग्रन्थ हमारे मनुष्यत्वकी दुर्गतिसे रक्षा करते आ रहे हैं। महानद जैसे सभी देशों में नहीं होते हैं, वैसे ही महाकाव्य भी दुनिया की कुछ जातियोंके भाग्यमें ही जुटते हैं। फिर जिस देशके महाकाव्य रामायण और महाभारत-जैसे हों, उस देशके सौभाग्यका तो अन्त ही नहीं है, इस सौभाग्यका फल कितना सुदूर प्रसारी है। उसे हम अपने सहज औदासीन्यवश ही विचार करके नहीं देखते हैं। यह बात हमें निश्चित रूपसे जान लेनी चाहिये कि भागीरथी और ब्रह्मपुत्रकी शाखा-प्रशाखाएँ जिस तरह हमारी बंगभूमिको जल और शस्यसे पूर्ण किये हुए हैं और घर-घरमें चिरकालसे जैसे हमारी क्षुधाके लिये अन्न और प्यासके लिये जल जुगाती आ रही हैं, उसी तरहसे कृत्तिवासी रामायण एवं काशीरामदासका महाभारत चिरकालसे हमारे मनके लिये अन्न और जलके अक्षय भण्डारके रूपमें बने हुए हैं। अगर ये दो ग्रन्थ न होते, तो हमारी मानसिक प्रकृतिमें कैसी शुष्कता और चिरदुर्भिक्ष बना रहता, आज उसकी हमारे लिये कल्पना करना भी कठिन है।' (३० श्रावण, १३१४ बंगाब्द)।

इस दृष्टिसे आज अगर हिन्दी-भाषी क्षेत्रके बालकोंका विचार किया जाय, तो रामायण और महाभारत-कथाके सुलभ पाठ की कितनी आवश्यकता है। आज बच्चोंका मन वीडियो गेम और कॉमिक्समें रमता है। ये दोनों ही उसकी मानसिक प्रकृतिको हिंसक और संवेदनहीन बना देते हैं, इस दृष्टिसे उनके पढ़नेके लिये रामायण और महाभारतकी सरल भाषामें लिखी कथाएँ सुलभ करानेकी आवश्यकता है।

कहानी—

मोचीमें मनुष्यत्व

एक गरीब भूखे ब्राह्मणने किसी बड़े शहरमें ढाई पहर घर-घर धक्के खाये, परंतु उसे एक मुट्ठी चावल भी किसीने नहीं दिया। तब वह थक गया और निराश होकर रास्तेके एक किनारे बैठकर अपने भाग्यको कोसने लगा—'हाय! मैं कैसा अभागा हूँ कि इतने धनी शहरमें किसीने एक मुट्ठी चावल देकर मेरे प्राण नहीं बचाये।' इसी समय उसी रास्तेसे एक सौम्यमूर्ति साधु जा रहे थे, उनके कानोंमें ब्राह्मणकी करुण आवाज गयी और उन्होंने पास आकर पूछा—'क्यों भाई, यहाँ बैठे-बैठे तुम क्यों अपनेको कोस रहे हो?' दरिद्र ब्राह्मणने कातर कण्ठसे कहा—'बाबा! मैं बड़ा ही भाग्यहीन हूँ, सुबहसे ढाई पहर दिन चढ़ेतक मैं द्वार-द्वार भटकता रहा, कितने लोगोंके सामने हाथ फैलाया, रोया, गिड़गिड़ाया—परंतु किसीने हाथ उठाकर एक मुट्ठी भीख नहीं दी। बाबा! भूख-प्यासके मारे मेरा शरीर अत्यन्त थक गया है, अब मुझसे चला नहीं जाता। इससे यहाँ बैठा अपने भाग्यपर रो रहा हूँ।'

साधुने हँसकर कहा—'तुमने तो मनुष्यसे भीख माँगी ही नहीं, मनुष्यसे माँगते तो निश्चय ही भीख मिलती।' ब्राह्मणने चकित होकर कहा—'बाबा! तुम क्या कह रहे हो। मैंने दोनों आँखोंसे अच्छी तरह देखकर ही भीख माँगी है। सभी मनुष्य थे, पर किसीने मेरी कातर पुकार नहीं सुनी।'

साधु बोले—'मनुष्यके दु:खको देखकर जिसका हृदय नहीं पिघलता, वह कभी मनुष्य नहीं है, वह तो मनुष्यदेहधारी पशुमात्र है। तुम यह चश्मा ले जाओ, एक बार इसे आँखोंपर लगाकर भीख माँगो, मनुष्यसे भीख माँगते ही तुम्हारी आशा पूर्ण होगी—तुम्हें मनचाही वस्तु मिलेगी।' साधुने इतना कहकर एक चश्मा दिया और अपना रास्ता लिया।

ब्राह्मणने मन-ही-मन सोचा कि 'यह तो बड़ी आफत है, चश्मा लगाये बिना क्या मनुष्य भी नहीं दिखायी देगा? जो कुछ भी हो—साधुके आज्ञानुसार एक बार चश्मा लगाकर घूम तो आऊँ।' यह सोचकर ब्राह्मण चश्मा लगाकर भीखके लिये चला। तब उसे जो दृश्य दिखायी दिया, उसे देखकर तो उसकी बोलती बन्द हो गयी और सिरपर हाथ रखकर वह एक बार तो बैठ गया। बिना चश्मेके जिन लोगोंको मनुष्य समझकर ब्राह्मणने भीख माँगी थी, अब चश्मा लगाते ही उनमें किसीका मुँह सियारका दिखायी देने लगा, किसीका कुत्ते या बिल्लीका और किसीका बन्दर या बाघ-भालूका-सा। इस प्रकार उस शहरके घर-घरमें घूमकर वह सन्ध्यासे कुछ पहले एक मैदानमें आ पहुँचा। वहाँ उसने देखा—पेड़के नीचे एक मोची फटे जूतेको सी रहा है। चश्मेसे देखनेपर उसका मुख आदमीका-सा दिखायी दिया। उसने कई बार चश्मा उतारकर और लगाकर देखा—ठीक मनुष्य ही नजर आया। तब उसको बड़ा आश्चर्य हुआ और वह मन-ही-मन सोचने लगा 'मैं ब्राह्मण होकर फटे जूते गाँठनेवाले इस मोचीसे कैसे भीख माँगूँ।' इतनेमें मोचीकी दृष्टि ब्राह्मणपर पड़ी और दृष्टि पड़ते ही उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा—'महाराजजी! आप बड़े उदास और थके मालूम होते हैं—आपने अभीतक निश्चय ही कुछ खाया नहीं है। मैं तो अतिशय दीन-हीन हूँ। मेरी हिम्मत नहीं होती कि मैं आपसे कुछ प्रार्थना करूँ। पर यदि दया करके आप मेरे साथ चलें तो दिनभरमें जूते गाँठकर मैंने जो दो-चार पैसे कमाये हैं, उन्हें मैं पासके ही हलवाईकी दूकानपर दे देता हूँ, आप कृपा करके कुछ जल-पान कर लेंगे तो आपको तनिक स्वस्थ देखकर इस कँगलेके हृदयमें आनन्द समायेगा नहीं।'

ब्राह्मणके प्राण भूख-प्यासके मारे छटपट कर रहे थे। मोचीकी सौजन्य और सहानुभूतिपूर्ण बात ब्राह्मणने तुरन्त मान ली। दोनों हलवाईकी दूकानपर पहुँचे। मोचीने अपना बटुआ झड़काया तो उसमेंसे पन्द्रह पैसे निकले। मोचीने वे पैसे हलवाईके पास रखकर कहा, 'हलवाई दादा! इन पैसोंसे जितनी आ सके, उतनी मिठाई महाराजजीको तुरन्त दे दो, उसे खाकर इनको जरा तो आराम मिले। मैं अभी आता हूँ।'

इतना कहकर परदु:खकातर मोची मुट्ठी बाँधकर घरकी तरफ दौड़ा और उसने मन-ही-मन विचार किया कि 'घरमें जो एक नये जूतेका जोड़ा बनाया रखा है, उसे अभी बेच दूँ और जितने पैसे मिलें, लाकर तुरन्त इन ब्राह्मण महाराजको दे दूँ, तब मेरे मनको चैन पड़े।' वह तुरन्त घर पहुँचा और जूतेका जोड़ा लेकर बाजारमें प्रधान चौराहेपर खड़ा हो गया। वहाँके राजा सन्ध्याके समय जब घूमने जाते, तब प्रतिदिन अपनी पसन्दका नया जूता खरीदकर पहनते। नित्य नये जूते खरीदकर लानेका काम मन्त्रीजीके जिम्मे था। मन्त्रीने कई जूते ले जाकर राजाको दिखाये, परंतु उनमेंसे कोई भी राजाको पसन्द नहीं आया और न किसीका माप ही पैरमें ठीक बैठा। राजाने मन्त्रीको डाँटकर कहा कि 'मैं पाँच सौ रुपये दाम दूँगा। तुम जल्दी मेरी पसन्द तथा ठीक मापके जूते लाओ। नहीं तो, मैं घूमने नहीं जा सकूँगा और वैसी हालतमें तुमको कठोर दण्ड दिया जायगा।' मन्त्री बेचारे भगवान्‌का नाम लेकर काँपते हुए फिर जूतेकी खोजमें निकले और चौराहेपर पहुँचते ही एक मोचीको सुन्दर नये जूते लिये खड़े देखा। जूते लेकर तुरन्त मन्त्रीजी राजाके पास पहुँचे। मोचीको भी वे साथ ले आये थे। भगवान्‌की कृपासे यह जूता-जोड़ा राजाको बहुत ही पसन्द आया और पैरोंमें तो ऐसा ठीक बैठा, मानो पैरोंका माप देकर ही बनाया गया हो। राजाने प्रसन्न होकर मोचीको पाँच सौ रुपये जूतेका मूल्य और पाँच सौ रुपये इनाम—कुल एक हजार रुपये देनेका आदेश दिया। मोचीने आनन्दविह्वल होकर गद्‌गद स्वरमें कहा—'सरकार! जरा ठहरनेकी आज्ञा हो, मैं अभी आता हूँ, ये रुपये जिनको मिलने हैं, उनको मैं तुरन्त ले आता हूँ, सरकार! उन्हींके हाथमें रुपये दिला दीजियेगा।'

मोचीकी यह बात सुनकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ और राजाने पूछा—'ये जूते तो तुम्हारे अपने हाथके बनाये हैं, फिर तुम इनके दाम दूसरेको कैसे दिलवाना चाहते हो?'

'सरकार! मैंने इन जूतोंके दाम एक गरीब ब्राह्मणको देनेका संकल्प मनमें कर लिया था। तब मैं इनका मूल्य कैसे लेता? पूर्व जन्मोंके कितने पापोंके फलस्वरूप तो मुझे यह नीच जीविका मिली है, फिर इस जन्ममें ब्राह्मणका हक छीन लूँगा तब तो नरकमें भी मुझे जगह नहीं मिलेगी।' इतना कहकर मोची दौड़कर हलवाईकी दूकानपर पहुँचा और हाथ जोड़कर ब्राह्मणसे बोला—'महाराजजी! दया करके एक बार मेरे साथ राजमहलमें चलिये।' ब्राह्मण उसके आत्मीयतापूर्ण व्यवहारसे आकर्षित होकर मन्त्रमुग्धकी तरह उसके पीछे चल पड़ा और राजाके सामने जा पहुँचा। तब मोचीने राजासे कहा—'सरकार! इन्हीं ब्राह्मणदेवताको जूतेका मूल्य दिलवानेका आदेश दिया जाय।' राजाने मन्त्रीको एक हजार रुपये ब्राह्मणको देनेकी आज्ञा दी और विस्मय तथा कौतूहलपूर्ण हृदयसे ब्राह्मणसे पूछा—'पण्डितजी! हमारी राजधानीमें इतने धनी-मानी लोगोंके होते हुए आपने इस मोचीसे भीख क्यों माँगी?' तब सरलहृदय ब्राह्मणने सारा प्रसंग सुनाकर चश्मा दिखलाया और राजासे कहा कि 'आप स्वयं चश्मा लगाकर सत्यकी परीक्षा कर लें।' राजाने चश्मा लगाकर सबसे पहले मन्त्रीके मुँहकी ओर देखा तो वह सियार दिखायी दिया। चारों तरफ देखा—कोई कुत्ता, कोई बिल्ली, कोई बन्दर, कोई बकरी, कोई भेड़, कोई गधा और कोई बैल दिखायी दिया। चश्मा उतारकर देखा तो सभी मनुष्य दीख पड़े। तब राजाने अत्यन्त विस्मित होकर चश्मा मन्त्रीको दिया और कहा—'देखो मन्त्रीजी! चारों ओर पशु-ही-पशु दिखायी देते हैं, यह बड़े आश्चर्यकी बात है!' तब मन्त्रीने चश्मा लगाकर राजाके मुखकी ओर देखा तो एक बड़ा बाघ दीख पड़ा और चारों ओर दरबारी लोग भाँति-भाँतिके जानवर दीखे। तब राजाने एक दर्पण मँगाकर चश्मा लगाकर अपना मुख देखा और यों सभीको अपना-अपना मुँह दिखलाया। परंतु चश्मा लगानेपर सभी लोगोंको मोचीका मुख आदमीका-सा ही दिखायी दिया। तब राजाने मोचीके चरणोंमें गिरकर कहा—'आजसे यह राज्य तुम्हारा हुआ; मैं राज्य, धन, ऐश्वर्य नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ—केवल तुम्हारे जैसा

उच्च और विशाल हृदय। मनुष्यका शरीर धारण करके यदि मनुष्यका-सा हृदय नहीं हुआ तो मनुष्यकी मूर्तिका क्या मूल्य है? मानव-जन्मकी क्या सार्थकता है?'

मोचीने कहा—'सरकार! आप जो कुछ देना चाहते हों, इन ब्राह्मण देवताको दीजिये। मैं दीन-हीन कंगाल राज्य लेकर क्या करूँगा।' वह दरिद्र ब्राह्मण सोचने लगा—'पता नहीं, मेरी कितने जन्मोंकी तपस्या है, जिसके फलस्वरूप आज इस मोचीरूपधारी विशालहृदय महाप्राण पुरुषके दर्शन और कृपा प्राप्त करनेका मुझे सौभाग्य मिला है।' यों विचारकर कृतज्ञ हृदयसे उस ब्राह्मणने कहा—'भाई मोची! मैं न तो राज्य चाहता हूँ और न देवत्व, न ब्रह्मत्व या समस्त विश्वका आधिपत्य ही चाहता हूँ। मैं तो चाहता हूँ तुम्हारे-जैसा मनुष्यत्व।'

मोचीको भावावेश हो गया और वह आकुल-हृदयसे भगवान्के चरण-कमलोंका मधुर स्मरण करके अश्रुपूर्ण लोचन और प्रेमसे गद्‌गद-कण्ठ होकर कहने लगा—'मेरे अनन्त करुणामय प्रभो! धन्य तुम्हारी करुणाको! मैंने केवल तुच्छ एक जोड़े जूतेका मूल्य ब्राह्मणको देनेका संकल्प किया था, इसीसे तुम मुझको इतना बढ़ा रहे हो, तुम्हारे चरणोंमें शरीर, मन, प्राण सर्वस्व समर्पण करके जगत्‌की सेवा कर सकनेपर तो, तुम पता नहीं, कितना प्यार करते हो।'

यह कहकर मोची आँखोंसे आनन्दाश्रुकी वर्षा करता हुआ वहाँसे चुपचाप चल दिया। राजा और ब्राह्मण चकित दृष्टिसे उसकी ओर देखते रह गये।

परोपकारका शिखर—श्रीनाग महाशय

श्रीरामकृष्ण परमहंसके अनुगतोंमें एक श्रीदुर्गाचरण नागका नाम 'नाग महाशय' प्रसिद्ध है। उनका सेवा-भाव अद्भुत था। एक बार उन्होंने एक गरीबको अपनी झोपड़ीमें भूमिपर सोते देखा। तब वे अपने घर जाकर बिछौना उठा लाये और उसपर उसे सुलाया।

एक बार शीतकालमें एक रोगी ठण्डसे सिकुड़ा दीख गया। नाग महाशयने अपनी ऊनी चद्दर उसपर डाल दी। स्वयं रातभर उसके पास बैठे उसकी सेवा करते रहे।

कलकत्तेमें प्लेग पड़ा तो निर्धनोंकी झोपड़ियोंमें जाकर उनकी सेवा करनेवाले केवल नाग महाशय थे। एक झोपड़ीमें पहुँचे तो एक मरणासन्न रोगी गंगाकिनारे पहुँचानेके लिये रो रहा था। नाग महाशयने अकेले उसे कंधेपर उठाया और गंगातटपर ले गये। जबतक उसका शरीर छूट नहीं गया, उसे गोदमें लिये बैठे रहे। देह छूट जानेपर उसका संस्कार करके तब लौटे। प्लेग छूतका रोग है; किंतु अपने प्राणोंका मोह नाग महाशयकी सेवामें कभी बाधक नहीं बना।

एक दिन घरपर एक अतिथि आ गये। जाड़ेके दिन थे और जोरोंसे वर्षा हो रही थी। घरमें चार कमरे थे, जिनमें तीन इतना टपकते थे कि बैठनेका भी स्थान नहीं था। एक कोठरी सूखी थी। रात्रिमें अतिथिको उसमें शयन करा दिया। स्वयं पत्नीसे बोले—'आज अपने बड़े सौभाग्यका दिन है। भगवान्का स्मरण करनेमें आजकी रात्रि व्यतीत की जाय।'

पूरी रात पति-पत्नीने बैठकर भजन करते बिता दी।

नाग महाशयके घरका छप्पर छाया जा रहा था। मजदूर ऊपर काम कर रहे थे। गरमीके दिन थे। दोपहरका समय था। नाग महाशयने मजदूरोंको धूपमें जलते देखा, उनसे रहा नहीं गया। वे छाता लेकर ऊपर पहुँचे और उन मजदूरोंपर छाता तानकर खड़े हो गये। मजदूर बेचारे बड़े संकोचमें पड़कर बार-बार मना करने लगे, पर वे माने ही नहीं। दया जो उमड़ पड़ी थी!

पितामह भीष्मका दिव्य महाप्रयाण

पितामह भीष्म भगवान्के परम भक्त थे। पिताकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया। उन्हें इच्छामृत्युका वरदान प्राप्त था। वे सदाचारी, वेदोंके ज्ञाता, महान् वीर, आत्मज्ञानी और भगवान्के सच्चे भक्त थे। उनके प्राणत्यागका प्रसंग बड़ा ही मार्मिक है, जिसका वर्णन श्रीमद्भागवतमहापुराणके प्रथम स्कन्धके नौवें अध्यायमें हुआ है। धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर महाभारतके युद्धमें हुए स्वजनोंके वधके कारण शोकग्रस्त हो रहे थे, उनका चित्त किसी तरह भी शान्त नहीं हो रहा था। तब भगवान् श्रीकृष्ण उनको भीष्मजीके पास लेकर आये। भगवान् श्रीकृष्ण भीष्मजीके प्रभावको जानते थे। भगवान् अपने भक्तकी महिमाको प्रकट करनेके लिये ऐसी लीला करते हैं। राजा युधिष्ठिरने सब धर्मोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे कुरुक्षेत्रकी यात्रा की, जहाँ भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हुए थे। उस समय भरतवंशियोंके गौरवरूप भीष्मपितामहको देखनेके लिये सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षि वहाँ आये। पर्वत, नारद, धौम्य, भगवान् व्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्योंके साथ परशुरामजी, वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन तथा और भी शुकदेव आदि शुद्धहृदय महात्मागण एवं शिष्योंके साथ कश्यप, अंगिरापुत्र बृहस्पति आदि मुनिगण वहाँ पधारे। भीष्मपितामह धर्मको और देश-कालके विभागको—कहाँ किस समय क्या करना चाहिये, इस बातको जानते थे। उन्होंने उन बड़भागी ऋषियोंको सम्मिलित हुआ देखकर उनका यथायोग्य सत्कार किया। वे भगवान् श्रीकृष्णका प्रभाव भी जानते थे। अतः उन्होंने अपनी लीलासे मनुष्यका वेष धारण करके वहाँ बैठे हुए तथा जगदीश्वरके रूपमें एवं हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णकी बाहर तथा भीतर दोनों जगह पूजा की।

पाण्डव बड़े विनय और प्रेमके साथ भीष्मपितामहके पास बैठ गये, उन्हें देखकर भीष्मपितामहकी आँखें प्रेमके आँसुओंसे भर गयीं। उन्होंने उनसे कहा—धर्मपुत्रो! हाय! हाय! यह बड़े कष्ट और अन्यायकी बात है कि तुम लोगोंको ब्राह्मण, धर्म और भगवान्के आश्रित रहनेपर भी इतने कष्टके साथ जीना पड़ा, जिसके तुम कदापि योग्य नहीं थे। जिस प्रकार बादल वायुके वशमें रहते हैं, वैसे ही लोकपालोंके सहित सारा संसार कालभगवान्के अधीन है। मैं समझता हूँ कि तुमलोगोंके जीवनमें ये जो अप्रिय घटनाएँ घटित हुई हैं, वे सब उन्हींकी लीला हैं। ये कालरूप श्रीकृष्ण कब क्या करना चाहते हैं, इस बातको कभी कोई नहीं जानता। बड़े-बड़े ज्ञानी भी इसे जाननेकी इच्छा करके मोहित हो जाते हैं। युधिष्ठिर! संसारकी ये सब घटनाएँ ईश्वरेच्छाके अधीन हैं। उसीका अनुसरण करके तुम इस अनाथ प्रजाका पालन करो, क्योंकि अब तुम्हीं इसके स्वामी और इसका पालन करनेमें समर्थ हो।

अन्त समयमें भगवान्का सामने होना यह जीवका बहुत बड़ा भाग्य है। भीष्मजीकी भक्तिके कारण ही ऐसा संयोग बन पड़ा है। भीष्मजी पाण्डवोंसे श्रीकृष्ण भगवान्के प्रभावका वर्णन करते हैं।

भीष्मजी कहते हैं—श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। ये सबके आदिकारण और परम पुरुष नारायण हैं। अपनी मायासे लोगोंको मोहित करते हुए ये यदुवंशियोंमें छिपकर लीला कर रहे हैं। इनका प्रभाव अत्यन्त गूढ़ एवं रहस्यमय है। युधिष्ठिर! उसे भगवान् शंकर, देवर्षि नारद और स्वयं भगवान् कपिल ही जानते हैं। जिन्हें तुम अपना ममेरा भाई, प्रिय मित्र और सबसे बड़ा हितू मानते हो और जिन्हें तुमने प्रेमवश अपना मन्त्री, दूत और सारथितक बनानेमें संकोच नहीं किया है, वे स्वयं परमात्मा हैं। भगवत्परायण योगनिष्ठ पुरुष भक्तिभावसे इनमें अपना मन लगाकर और वाणीसे इनके नामका कीर्तन करते हुए शरीरका त्याग करते हैं और कामनाओं तथा कर्मके बन्धनसे छूट जाते हैं। वे देवदेव भगवान्; जिनके चतुर्भुजरूपका

लोगोंको केवल ध्यानमें दर्शन होता है, वे यहीं स्थित रहकर प्रतीक्षा करें, जबतक मैं इस शरीरका त्याग न कर दूँ।

युधिष्ठिरने उनकी यह बात सुनकर शरशय्यापर सोये हुए भीष्मपितामहसे बहुत-से ऋषियोंके सामने ही नाना प्रकारके धर्मोंके सम्बन्धमें अनेकों रहस्य पूछे। तब तत्त्ववेत्ता भीष्मपितामहने दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म, भगवद्धर्म, वर्ण और आश्रमके अनुसार पुरुषके स्वाभाविक धर्म—इन सबका अलग-अलग संक्षेप और विस्तारसे वर्णन किया। इनके साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका तथा इनकी प्राप्तिके साधनोंका अनेकों उपाख्यान और इतिहास सुनाते हुए विभागशः वर्णन किया। भीष्मपितामह इस प्रकार धर्मका प्रवचन कर ही रहे थे कि वह उत्तरायणका समय आ पहुँचा, जिसे मृत्युको अपने अधीन रखनेवाले भगवत्परायण योगी लोग चाहा करते हैं। उस समय भीष्मपितामहने वाणीका संयम करके मनको सब ओरसे हटाकर उसे अपने सामने स्थित आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्णके सुन्दर चतुर्भुज विग्रहपर उस समय पीताम्बर फहरा रहा था। भीष्मजीकी आँखें उसीपर एकटक लग गयीं। उनको शस्त्रोंकी चोटसे जो पीड़ा हो रही थी, वह तो भगवान्‌के दर्शनमात्रसे ही तुरन्त दूर हो गयी तथा भगवान्‌की विशुद्ध धारणासे उनके जो कुछ अशुभ शेष थे, वे सभी नष्ट हो गये। अब शरीर छोड़नेके समय उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियोंके वृत्ति-विलासको रोक दिया और बड़े प्रेमके साथ भगवान्‌की स्तुति की। पितामह भीष्मने कहा—अब मृत्युके समय मैं अपनी यह बुद्धि; जो अनेक प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करनेसे अत्यन्त शुद्ध एवं कामनारहित हो गयी है, उसे यदुवंश-शिरोमणि अनन्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित करता हूँ, जो सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही कभी विहार करनेकी इच्छासे प्रकृतिको स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टि-परम्परा चलती है।

जिनका शरीर त्रिभुवनसुन्दर एवं श्याम तमालके समान साँवला है, जिसपर सूर्य रश्मियोंके समान श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता रहता है और जिनके कमलसदृश मुखपर घुँघराली अलकें लटकती रहती हैं, उन अर्जुन-सखा श्रीकृष्णमें मेरी निष्कपट प्रीति हो।

गीताके रूपमें आत्मविद्याका उपदेश करनेवाले परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरी प्रीति बनी रहे। अर्जुनके रथकी रक्षामें सावधान जिन श्रीकृष्णके बाँयें हाथमें घोड़ोंकी रास थी और दाहिने हाथमें चाबुक—इन दोनोंकी शोभासे उस समय जिनकी अपूर्व छवि बन गयी थी तथा महाभारत-युद्धमें मरनेवाले वीर जिनकी इस छविका दर्शन करते रहनेके कारण सारूप्य मोक्षको प्राप्त हो गये, उन्हीं पार्थसारथि भगवान् श्रीकृष्णमें मुझ मरणासन्नकी परम प्रीति हो। जैसे एक ही सूर्य अनेक आँखोंसे अनेक रूपोंमें दीखते हैं, वैसे ही अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने ही द्वारा रचित अनेक शरीरधारियोंके हृदयमें अनेक रूपसे जान पड़ते हैं—वास्तवमें तो वे एक और सबके हृदयमें विराजमान हैं ही। उन्हीं इन भगवान् श्रीकृष्णको मैं भेद-भ्रमसे रहित होकर प्राप्त हो गया हूँ। इस प्रकार भीष्मपितामहने मन, वाणी और दृष्टिकी वृत्तियोंसे आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णमें अपने आपको लीन कर दिया। उनके प्राण वहीं विलीन हो गये और वे शान्त हो गये। उन्हें अनन्त ब्रह्ममें लीन जानकर सब लोग वैसे ही चुप हो गये, जैसे दिनके बीत जानेपर पक्षियोंका कलरव शान्त हो जाता है। [**प्रेषक—श्रीदिलीपजी देवनानी**]

तीर्थ-दर्शन—

भगवान् श्रीरामद्वारा स्थापित सूर्यमन्दिर—मोढेरा

(श्रीकृष्णनारायणजी पाण्डेय, एम०ए०, एल०टी०, एल०एल०बी०)

पुराणेतिहासमें प्रसिद्ध रघुवंश या सूर्यवंशके प्रशासकोंके इष्टदेव या आदि पूर्वज भगवान् सूर्यदेव रहे हैं। रामायणकालमें लंकाविजयके पश्चात् मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजीने कुलपुरोहित महर्षि वसिष्ठके निर्देशानुसार तत्कालीन सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्राका कार्यक्रम बनाया। वसिष्ठजीने तीर्थोंकी महिमा बताते हुए कहा कि सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ धर्मारण्य है, जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने मिलकर पूर्वकालमें सबसे पहले स्थापित किया था। वसिष्ठजीके इन वचनोंको सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने सपरिजन पहले वहाँ जानेका विचारकर पूर्वयात्राविधानका पालन किया। फिर वसिष्ठजीको आगेकर महामाण्डलिक सामन्त राजाओंके साथ उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया। आगे जाकर फिर वे पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गये। गाँवों, प्रदेशों और कई वनोंको लाँघते हुए वे आगे बढ़ते चले गये।

श्रीरामचन्द्रजी दसवें दिन परम उत्तम धर्मारण्यक्षेत्र, सिद्धपुर (-मोढेरा-गुजरात)-के निकट पहुँच गये। धर्मारण्यके समीप ही 'माण्डलिकपुर'को देखकर वहीं श्रीरामजीने अपनी सेनाके साथ विश्राम किया। उस समय धर्मारण्य-क्षेत्र निर्जन एवं उजाड़ होकर भयानक प्रतीत हो रहा था। आगे बढ़ते हुए वे 'मधुवासनक' नामक पवित्र ग्राममें पहुँचे और प्रतिष्ठाविधिके साथ वहाँ मातृकाओंका पूजन किया। तदनन्तर उन्होंने सुवर्णा नदी (पुष्पावती)-के दक्षिण तटपर हरिक्षेत्र (मोढेरा)-का निरीक्षण किया एवं नदीके उत्तर तटपर सैनिकोंको उतारकर स्वयं उस क्षेत्रमें भ्रमण करने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने सुवर्णा नदीके दोनों तटोंपर श्रीरामेश्वर तथा श्रीकामेश्वर (धर्मेश्वर) शिवलिंगोंकी स्थापना की।

रामचन्द्रजीने धर्मारण्यकी भट्टारिका (मातंगी) देवीसे उस स्थानका प्राचीन वृत्तान्त जानकर सत्यमन्दिर नामसे धर्मारण्यक्षेत्रका जीर्णोद्धार कराया। उन्होंने पहले महान् पर्वतके समान सुन्दर एवं विशाल देवी-मन्दिरको

बनवाया और फिर उसके आसपास अनेकानेक सुन्दर बाह्यशाला, ग्रहशाला तथा ब्रह्मशालाका निर्माण कराया। यह सारा निर्माण-कार्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंका आवाहनकर धर्मकूप (धर्मेश्वरीवापी)-के समीप कराया गया। इसके बाद यहाँ एक विशाल यज्ञका आयोजन किया गया।

श्रीरामचन्द्रजीने प्रतिष्ठाविधिके साथ अपने कुलके स्वामी भगवान् सूर्यको स्थापित किया, वेदोंसे युक्त ब्रह्माजीकी स्थापना की और महाशक्ति श्रीमाता एवं श्रीहरिको भी स्थापित किया। विघ्नोंका निवारण करनेके लिये गणेशजी एवं अन्य देवताओंकी स्थापना की। हनुमान्‌जीको वहाँकी रक्षाका भार सौंपकर वे दूसरे तीर्थोंको जानेके लिये तत्पर हुए। मूल स्थानकी तरह इस स्थानके भी चारों युगोंमें चार नाम बदले। इस पवित्र तीर्थस्थलका सतयुगमें धर्मारण्य, त्रेतामें सत्यमन्दिर, द्वापरमें वेदभवन तथा कलियुगमें मोहेरक (मोढेरा) नाम हुआ—

धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमन्दिरम्।
द्वापरे वेदभवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम्॥

(स्कन्द पु०, ब्राह्मखण्ड, धर्मारण्य-माहात्म्य ५०। ६०)

इस रामायणकालीन तीर्थसे सम्बद्ध सभी स्थल आज भी मोढेरा (गुजरात)-में विद्यमान हैं। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा स्थापित यहाँका सूर्यमन्दिर है, जिसका अन्तिम जीर्णोद्धार ११वीं शताब्दीमें कराया गया।* यह मन्दिर स्थापत्यकलाका एक भव्य आदर्श है। यह स्थान पश्चिम रेलवेके बेचराजी (बहुचराजी) स्टेशनसे ३९ कि०मी० दूर है। गुजरातके इस प्रसिद्ध सूर्यमन्दिरको देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि यह मन्दिर इतना पुराना है; परंतु वास्तविकता यह है कि मूलतः इस सूर्यमन्दिरकी स्थापना भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके कर-कमलोंद्वारा हुई। इसका वर्तमान स्वरूप राजपूतकालका है।

रामायणकी घटनाओंसे सम्बद्ध विभिन्न स्थलोंपर प्रतीकात्मक स्मारकके रूपमें बने मन्दिर इसी प्रकारसे मूलतः प्राचीन होते हुए भी वर्तमान स्थितिमें निरन्तर जीर्णोद्धार होते रहनेसे अधिक प्राचीन नहीं प्रतीत होते। रामायणकी ऐतिहासिकतापर शोध करनेवाले विद्वानोंको इस तथ्यकी ओर अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

---

* भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षणके अनुसार मोढ़ेराका सूर्यमन्दिर गुजरातके महेसाणा जिलेकी पुष्पावती नदीके किनारे स्थित है। यह मन्दिर सम्भवतः सोलंकी राजा भीमदेव प्रथम (१०२२-६३ ई०)-के शासनकालमें बनाया गया था। स्थापत्यके दृष्टिकोणसे यह सूर्यमन्दिर गुजरातमें सोलंकी शैलीमें बने मन्दिरोंमें एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

ऊँचे प्लेटफार्म (जगती)-पर एक ही अक्षपर बने इस मन्दिरके मुख्यतः तीन भाग हैं—(१) प्रदक्षिणा-पथयुक्त गर्भ-गृह तथा एक मण्डप, जो मन्दिरके मुख्य भाग बनाते हैं, (२) एक अलगसे बना सभामण्डप, जिसके सामने एक अलंकृत तोरण है, तथा (३) पत्थरोंसे निर्मित एक कुण्ड, जिसमें कई छोटे-बड़े लघु आकारके मन्दिर निर्मित हैं। मण्डपमें सुन्दरतासे गढ़े पत्थरके स्तम्भ अष्टकोणीय योजनामें खड़े किये गये हैं, जो अलंकृत तोरणोंको आधार प्रदान करते हैं। मण्डपकी बाहरी दीवारोंपर चारों ओर आले बने हुए हैं, जिनमें १२ आदित्यों, दिक्पालों, देवियों तथा अप्सराओंकी मूर्तियाँ प्रतिष्ठापित हैं। सभामण्डप (अथवा नृत्यमण्डप), जो कि कोणीय योजनामें बना है, वह भी सुन्दर स्तम्भोंसे युक्त है। सभामण्डपमें चारों मुख्य दिशाओंसे प्रवेशहेतु अर्धवृत्तीय अलंकृत तोरण है। सभामण्डपके सामने एक बड़ा तोरण द्वार है। इसके ठीक सामने एक आयताकार कुण्ड है, जिसे 'सूर्यकुण्ड' अथवा स्थानीय लोगों द्वारा 'रामकुण्ड', कहा जाता है। कुण्डके जल-स्तरतक पहुँचनेके लिये इसके अन्दर चारों ओर प्लेटफार्म तथा सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। साथ ही कुण्डके भीतर लघु आकारके कई छोटे-बड़े मन्दिर भी निर्मित किये गये हैं, जो कि विभिन्न देवी-देवताओं, जैसे देवी शीतलामाता, गणेश, शिव (नटेश), शेषशायी विष्णु तथा अन्यको समर्पित हैं।

संत-चरित—

परमहंस बाबा श्रीराममंगलदास

बाबा राममंगलदास एक उच्च कोटिके सिद्ध महात्मा थे। भगवान् श्रीरामके प्रति अत्यन्त उत्कट अनुराग तथा सर्वत्र समबुद्धि—ये दोनों विलक्षण भाव आपमें पूर्णरूपमें प्रतिष्ठित थे। दया, करुणा, परोपकार तथा सेवाकी निष्ठा—इसे उन्होंने अपने जीवनमें उतार लिया था। उनके परम आराध्य थे कौसलकिशोर श्रीराम और साधना-स्थली थी अयोध्या।

बाबा राममंगलदासजीका जन्म १३ फरवरी १८९३ ई० को ईसरबारा, जिला सीतापुरमें हुआ था। पुत्र तथा पत्नीके शीघ्र ही वियोगको देखकर इनके मनमें अत्यन्त निर्वेद हो आया। जन्मान्तरीय साधनाके जो संस्कार थे, वे मूर्तरूपमें व्यक्त होने लगे। इन्होंने गृहस्थ-जीवन छोड़ दिया और आध्यात्मिक साधनाके लिये अयोध्या जानेका निश्चय किया। बताया जाता है कि उन दिनों अयोध्यामें बाबा बेनीमाधवदासजी सुविख्यात संतोंमें एक थे। एक बार राममंगलदासजीके चचेरे भाई पं० अम्बिकाप्रसादजी बाबा बेनीमाधवदासजीसे दीक्षा लेनेकी इच्छासे अयोध्या आये। उसी समय किसी आवश्यक कार्यवश उन्हें अपने गाँव बुलानेके लिये बाबा राममंगलदासजी भी अयोध्या गये। वहाँ बाबा बेनीमाधवदासजीका दर्शन करनेपर इनके हृदयमें ऐसी स्फुरणा हुई कि इनसे मन्त्र-दीक्षा ली जाय। बस; फिर क्या था, इनकी इच्छा पूर्ण हो गयी। आपने बाबा बेनीमाधवदासजीको अपना गुरु मान लिया और यहींसे आपकी साधना और भी दृढ़तर हो गयी। बताया जाता है कि कड़ी धूपमें बैठकर ये ध्यान करते थे, भूसेमें गलेतक बैठकर कई-कई घण्टोंतक भगवन्नामका जप करते थे। यह भी सुना जाता है कि आपको पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जीके दर्शन हुए थे। आपने अपने दीक्षागुरु बाबा बेनीमाधवदासजीके उपदेशोंका बड़ी ही श्रद्धा एवं निष्ठासे पालन किया। आपपर गुरुकृपा एवं प्रभुकृपा दोनोंकी ही छत्रछाया थी। इनके गुरुजीने उपदेशमें इन्हें बताया कि 'अयोध्या रामजीका घर है, अतः तुम जीवनभर अयोध्यामें रहना, किसीकी भूमि दानमें स्वीकार मत करना, मृत्युके समय तुम्हारे पास एक पैसा भी नहीं निकलना चाहिये, यदि कोई मारे तो हाथ न उठाना तथा किसीसे भी वैर-भाव न रखना।' बाबा राममंगलदासजीने गुरुके कल्याणकारी उपदेशको अपने जीवनमें पूर्णतः उतार लिया। वे अपरिग्रह, साधुता, तप, संयम, सदाचार, परोपकार तथा त्याग-वैराग्यके प्रतिमानस्वरूप थे। आपकी उदारतासे सभी परिचित हैं। आपकी शिष्य-परम्परा भी अतिदीर्घ तथा बड़ी ही गौरवशालिनी है। आडम्बर और प्रदर्शनसे आपको बड़ी घृणा थी। आपके द्वारा रचित 'भक्त-भगवन्त-चरितावली एवं चरितामृत' ग्रन्थ आध्यात्मिक साहित्यकी एक अमूल्य कृति है।

महाराजश्रीको खेचरी सिद्ध थी। उनकी हिन्दू-मुसलमान, गरीब-अमीर, स्त्री-पुरुष, स्वस्थ-अपाहिज—सबपर समदृष्टि थी। वे गरीबोंको सदा अन्न-वस्त्र वितरित करते रहते थे। वे आयुर्वेदपद्धतिसे सामान्य जड़ी-बूटियोंसे असाध्य रोगोंका उपचार कर देते थे। प्रत्येक रोग, कष्ट आदिके लिये वे अपने शिष्योंको अपने आराध्य प्रभु राघवेन्द्र रामचन्द्रकी शरणमें जाने और उनका ही नाम स्मरण करनेको कहते थे। बाबा राममंगलदास आध्यात्मिक जगत्‌की महान् विभूति थे।

आपने शास्त्रोंकी मर्यादाको अपने जीवनमें उतार लिया था। आपके भक्तवृन्दके आपके सम्बन्धमें बड़े ही विलक्षण अनुभव हैं, जिनमेंसे दो-एक यहाँ प्रस्तुत हैं—

एक बारकी बात है, एक विद्वान् महाराजजीके पास गोकुलभवन, अयोध्या आये और आपसे पूछा—महाराजजी! यहाँ कोई विद्वान् है? महाराजजी बोले—रामजीकी कृपासे यहाँ सभी विद्वान् हैं। वे सज्जन फिर बोले—मुझे ऐसा विद्वान् बताइये, जो ब्रह्मचर्चामें निष्णात हो। इसपर महाराजजी बोले—यहाँ आप किसीसे भी चर्चा कर सकते हैं, भक्तोंपर भगवान्‌की कृपा बराबर बनी रहती है। संयोगसे उसी समय आश्रमका एक सेवक वहाँ उपस्थित हुआ, तब बाबाने उन सज्जनसे कहा—आप इनसे चर्चा कर सकते हैं, ऐसा कहकर बाबाजीने सेवकके सिरपर हाथ रखा। उसका ऐसा प्रभाव हुआ कि उसने सहज ही उनके सब प्रश्नोंका समाधान कर दिया। तब वे विद्वान् परमहंसजीका गौरव समझकर शान्त हो गये और उनके चरणोंमें गिर पड़े। ऐसे ही एक सज्जन लिखते हैं कि बाबाने एक बार मुझे बताया कि—'देखो! कोई विश्वास नहीं करेगा, मैं वर्षोंसे सोया नहीं हूँ।' उन्होंने कमरेका एक कोना दिखाकर कहा—'देखो! मेरी निद्रा उस कोनेमें खड़ी रहती है, मेरे पास नहीं आती।' महाराजजीके कथनपर गहराईसे विचार करनेपर मुझे लगा कि जाग्रत्-अवस्थामें भी तुरीय और तुरीयातीत-अवस्थाका अनुभव करनेवाले संतोंको साधारण निद्राकी आवश्यकता नहीं होती और इस साधनाके बलपर वे दृश्य और अदृश्य भी हो सकते हैं। एक बार बाबाजीने मुझे बताया कि माता-पिताकी सेवा ईश्वरकी सेवासे भी बढ़कर है। असहाय, दीन, हीन, बीमार प्राणीकी निःस्वार्थ सेवा करके भगवान्‌को प्राप्त किया जा सकता है। निःस्वार्थ-सेवा सबसे बड़ा धर्म है।

ऐसे ही उनके भक्तोंका अलग-अलग भाव है। बड़े-बड़े सिद्ध, संत, महात्मा बाबाजीके दर्शनके लिये आते थे और परमहंसजी सभीको राम-राम जपनेका उपदेश देते थे। उनका जीवन बड़ा ही सादगीपूर्ण था। साधारण अचला लगाये, बिना बिछौनेके चौकीपर वे विराजमान रहते थे। उन्होंने कभी अपने शरीरकी चिन्ता नहीं की। रूखी-सूखी रोटी और दालको भोग लगाकर प्रसाद रूपमें ग्रहण करना तथा कष्टमय वातावरणमें भी शान्त एवं प्रसन्न रहना—यह उनका स्वभाव बन गया था। वे कहा करते थे—साधुकी रहनी मर्यादित और त्यागमय होनी चाहिये। रामनामके उपदेशके साथ ही वे 'रहनीके सुधार' को सबसे बड़ी साधना मानते थे। सचमुच बाबा राममंगलदासजी अवधके संतोंके मुकुटमणि थे। ३१ दिसम्बर १९८४ ई० को अपनी साधनामें निरत रहते हुए आप अपने इष्टके भावलोकमें समाहित हो गये। महान् विभूतिको शतशः नमन। [**प्रेषक—श्रीदामोदरजी**]

परमहंस बाबा राममंगलदासजीके सदुपदेश

- **जपसे, पाठसे, पूजासे, कीर्तनसे; जिसमें मन लग जाय, उसीसे सब काम हो जाता है।**
- **बड़ी सच्चाईकी जरूरत है, बिना सत्यको पकड़े सत्य वस्तु कैसे मिलेगी, बताओ।**
- **एक बार अन्दरसे भगवान्‌से रो दो, तब सब पाप जल जाते हैं।**
- **भावसे सब होता है, तुम्हारा भाव ठीक है, तो सब काम हो जायगा।**
- **जब खान-पान शुद्ध नहीं होगा, तो मन कैसे शुद्ध होगा।**
- **अपनेको सबसे नीचा मानो, किसीसे घृणा मत करो; सब रूप भगवान्‌ने ही धरे हैं।**
- **मनसे जबरदस्ती लड़ना पड़ता है, तब काबूमें होता है।**
- **जप-पाठ-पूजन-कीर्तन-कथा कहने-सुननेसे, सेवा-परमार्थसे भी पट खुल जाते हैं। सारा खेल मनका है।**
- **तुम्हारी पूजा सिर्फ तुम जानो, तुम्हारा इष्ट जाने और किसीको पता भी न चले, वही पूजा फलीभूत होती है।**

कर्मसिद्धि और सफलताके लिये गीता

(डॉ० श्रीप्रभुनारायणजी मिश्र)

अर्जुन युद्धभूमिसे पलायन करना चाहते हैं। भागनेके पक्षमें वे अनेक तर्क देते हैं। यह युद्ध प्रतीकात्मक है। सम्पूर्ण जीवन ही एक प्रकारका युद्ध है, जो दो स्तरोंपर लड़ा जाता है—बाहरकी परिस्थितियोंसे और अन्दरकी अपनी ही वृत्तियोंसे। अर्जुन सामने उपस्थित कर्मसे भागना चाहते हैं, परंतु क्या सचमुच कर्मसे पलायन सम्भव है? गीता कहती है कि कर्मसे भागा ही नहीं जा सकता। अगर मनुष्य भाग रहा है तो वह भागनेका कर्म कर रहा है। लड़ रहा है तो लड़नेका कर्म कर रहा है। खाना, पीना, उठना, बैठना, सोना, जागना सब कर्म ही तो हैं। कर्मका करना तभी बन्द होता है, जब जीवन समाप्त हो जाय। एक भी क्षण कर्मके बिना व्यतीत नहीं होता—

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कर्म अपरिहार्य है। इस स्थितिमें व्यक्तिके सामने मात्र दो विकल्प बचते हैं—कर्मका चुनाव करना और कर्मके प्रति अपना दृष्टिकोण परिमार्जित करना। कभी-कभी कर्मका चुनाव करना भी अपने वश में नहीं रहता। उदाहरणार्थ यदि किसी जंगलमें एक शेर किसी व्यक्तिपर हमला कर दे तो उस व्यक्तिके पास दो ही विकल्प बचते हैं—लड़ना या भागना। यदि व्यक्ति ऐसे स्थानपर है, जहाँसे भागा ही नहीं जा सकता तो मनुष्यको मात्र लड़ना ही पड़ता है। विकल्पशून्यताकी स्थिति जीवनमें आती ही है। इसलिये कर्म एवं कर्मफलके प्रति अपना दृष्टिकोण परिवर्तित करना ही उचित है। श्रीमद्भगवद्गीताका एक बहुत महत्त्वपूर्ण श्लोक है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

इस श्लोकका भाव यह है कि कर्मपर तुम्हारा अधिकार हो सकता है, फलपर कदापि नहीं। कर्मफलहेतु कर्म न करो, अकर्ममें भी तुम्हारी आसक्ति न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण यह नहीं कहते कि कर्मपर तुम्हारा अधिकार है, वे कहते हैं कि कर्मपर तुम्हारा अधिकार हो सकता है। इस बातको थोड़ा गहराईसे समझनेकी आवश्यकता है। विज्ञान एवं तकनीकका विकास चाहे जितना ही क्यों न हो जाय, अन्ततः कर्म करनेके दो ही प्रमुख उपकरण अपने पास होते हैं। वे हैं—शरीर और मन। मनकी चंचलता और इसे नियन्त्रणमें रखनेकी कठिनाईसे सभी परिचित हैं। अर्जुन भी श्रीकृष्णसे कहते हैं कि मन बड़ा चंचल एवं बलवान् है। इसे वशमें रखना वायुको रोकनेकी भाँति अत्यन्त दुष्कर है, तब भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकी इस बातको स्वीकार करते हैं और कहते हैं—

'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।'

निश्चित रूपसे मन चंचल और कठिनाईसे वशमें आनेवाला है, परंतु वे अर्जुनका उत्साहवर्धन करते हुए कहते हैं कि हे कौन्तेय! मन अभ्यास और वैराग्यद्वारा वशमें आता है—

'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥'

अतः साररूपमें हम कह सकते हैं कि कार्य करनेके लिये प्रमुख उपकरण मनपर प्रायः लोगोंका नियन्त्रण नहीं रहता। अब जरा शरीरपर ध्यान लायें। मन तो मन है, शरीर भी अपने नियन्त्रणमें नहीं है। हृदय, मस्तिष्क, आदि शरीरके महत्त्वपूर्ण अंग हमारी अनुमतिके बिना ही कार्य करते रहते हैं। कोई नहीं जानता कि ये कब कार्य करना बन्द कर देंगे। शरीर सर्वाधिक जटिल यन्त्र है। यह समयके साथ क्षरित तो होता ही रहता है, कभी-कभी अचानक कार्य करना भी बन्द कर देता है। एक गणनाके अनुसार शरीरके ठीक-ठीक कार्य करते रहनेकी सम्भाव्यता तीन अरबमें मात्र एक है। इतनी कम सम्भाव्यतापर शरीरका लगभग ठीक-ठाक कार्य करते रहना एक आश्चर्य है और इसका पूर्ण स्वस्थ रहना सचमुच चमत्कार है। हम कोई भी कार्य करनेकी स्थितिमें तभी होते हैं, जब हमारा शरीर और मन दोनों सामान्य रूपसे ठीक-ठाक हों। यदि मन ठीक नहीं तो हम कार्य नहीं कर सकते हैं, यदि मन ठीक है, परंतु

शरीर बीमार है तो भी हम कार्य नहीं कर सकते। अत: कर्मपर हमारा अधिकार निश्चित रूपसे नहीं है। हम कर्म तभी कर सकते हैं, जब हमें शरीर और मनका सहयोग प्राप्त हो। अत: भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्मपर तुम्हारा अधिकार हो सकता है। कर्मपर तुम्हारा अधिकार है ही—यह मान्यता भ्रामक है, परंतु श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि कर्मफलपर तुम्हारा अधिकार कदापि नहीं है। क्यों? यदि हमने कर्म किया है तो फल मिलना ही चाहिये। कर्म-सिद्धान्तके अनुसार हर कर्म अपना फल देता है। कर्म कर्ताको ही फल देता है, कर्मके गणितमें निरस्तीकरणका नियम नहीं है, जैसे आपने यदि दस अच्छे और दस खराब कर्म किये तो कर्मफल शून्य नहीं होगा। दस अच्छे कर्मोंके दस अच्छे फल मिलेंगे तथा दस खराब कर्मोंके दस खराब फल, परंतु फल कब प्राप्त होगा, फलका स्वरूप क्या होगा—यह बहुत बड़ा रहस्य है। कर्मोंकी गति सचमुच बड़ी गहन है। भगवान् कहते हैं—'**गहना कर्मणो गतिः।**'

यदि कर्म-सिद्धान्तके अनुसार हर कर्मका फल होता ही है तो भगवान् यह क्यों कहते कि फलपर तुम्हारा अधिकार कदापि नहीं है। ध्यान रखिये, सृष्टिमें कर्म करनेवाले आप अकेले नहीं हैं। सम्पूर्ण निसर्ग कुछ-न-कुछ कर्म कर रहा है। कर्मफल इन सारे कर्मोंके प्रभावसे निर्धारित होता है। यदि किसी वस्तुपर कई लोग कई दिशाओंसे बल लगा रहे हों तो वह वस्तु किसी एक बलविशेषकी दिशामें विस्थापित नहीं होगी, बल्कि वह सारे बलोंके परिणामीकी दिशामें जायगी। फल-निर्धारणमें आपद्वारा किये गये कर्मका योगदान रहता है, परंतु मात्र आपद्वारा किया गया कर्म ही फलको पूर्णत: निर्धारित नहीं करता। अन्य कर्मोंकी भी भूमिका होती है। जैसे किसी प्रतियोगितामें प्रथम स्थानपर कौन होगा—इसका निर्धारण प्रथम स्थान पानेवाला प्रतियोगी ही नहीं करता, अपितु सारे प्रतियोगियोंका प्रयास इसका निर्धारण करता है। इस कारण जहाँ कर्म-सिद्धान्त अटल है, वहीं भगवान्‌का यह कथन कि फलपर आपका अधिकार नहीं है, पूर्ण सत्य है। यदि हमें सफल होना है तो हमें अपना ध्यान फलपर नहीं, अपितु कर्मकी परिपूर्णतापर रखना होगा। यदि हम फलपर ही मनको टिकाये रहेंगे तो इसके दो नुकसान होंगे—कर्म उत्तम प्रकारका नहीं होगा तथा फल न मिलनेकी स्थितिमें कुण्ठा एवं विषाद उत्पन्न होगा। अत: श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्मफलहेतु कर्म न करो। कर्म-सिद्धान्तके अनुसार फल तो मिलना ही है—वह आप चाहें या न चाहें। कर्मफलहेतु कर्म न करनेपर फल न मिलनेसे उत्पन्न होनेवाली कुण्ठा, हताशा और विषादग्रस्तता-जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याएँ स्वत: समाप्त हो जाती हैं। श्रीकृष्ण यह भी कहते हैं कि अकर्ममें तुम्हारी रुचि न हो अर्थात् अकर्मण्यता, आलस्य, प्रमाद आदिसे आप मुक्त रहें। अब आप ऐसे व्यक्तिकी कल्पना करिये जो निरन्तर कर्ममें लगा है, परंतु फलकी आशासे मुक्त है। कर्म-सिद्धान्तके अनुसार उस व्यक्तिको कर्मका फल तो प्राप्त होगा ही, कदाचित् यदि फल उसके अनुकूल न हुआ तो वह कुण्ठित, निराश और हताश नहीं होगा। इसलिये फलकी आकांक्षाका परित्याग तथा निरन्तर क्रियाशील रहना अत्यन्त श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक स्थिति है। यह स्थिति प्राप्त करना कठिन है, परंतु असम्भव नहीं। स्मरण रखें जीवनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ कठिनाईसे ही प्राप्त होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति जीवनमें सफलता प्राप्त करना चाहता है। यहाँ यह दार्शनिक प्रश्न नहीं उठाया जा रहा है कि शान्ति और प्रसन्नता अधिक महत्त्वपूर्ण है या सफलता। गीतामें शान्ति और प्रसन्नताको बहुत महत्त्व दिया गया है। यह आवश्यक नहीं कि सफलता शान्ति और प्रसन्नता प्रदान करे ही, परंतु यह निर्विवाद है कि अशान्त व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता—'**अशान्तस्य कुतः सुखम्।**'

गीतामें शान्ति प्राप्त करनेके अनेक सरल उपायोंका वर्णन है। सफलता निर्धारित करनेवाले तत्त्व तथा सफलताके प्रति उचित दृष्टिकोण भी गीताके विवेच्य विषयोंमें परिगणित हैं। सफलता चाहते सभी हैं, परंतु सभी सफल नहीं होते। अत: सफलताके प्रति उचित तथा व्यावहारिक दृष्टिकोणका विकास अत्यन्त आवश्यक है। गीतामें कर्मसिद्धि और सफलताके कई कारण बताये गये हैं, यथा—कर्म करनेका क्षेत्र, कर्म करनेवाला, कर्म करनेका साधन तथा अनेक प्रकारके प्रयत्न और चेष्टाएँ

तथा दैव। यदि हम गलत क्षेत्रमें कार्य कर रहे हैं तो हमारी सफलता संदिग्ध हो जाती है। अतः सफलताके आकांक्षीको क्षेत्रका चुनाव बहुत सोच-विचारकर करना चाहिये। यदि कर्म करनेवाला पूरे मनोयोगसे कार्य नहीं कर रहा है तो भी परिणाम अनुकूल होना प्रायः सम्भव नहीं होता। सफलता कर्तापर भी निर्भर करती है। कर्ताकी एकाग्रता, समर्पण तथा कर्मका वेग परिणामको प्रभावित करता है। कर्ताद्वारा प्रयोगमें लाये जानेवाले साधनोंकी महत्ता स्पष्ट है। अतः साधन भी कर्म, देश, काल तथा परिस्थितियोंके अनुसार होना चाहिये। सबकुछ होते हुए भी यदि चेष्टाएँ न की जायँ तो परिणाम आ ही नहीं सकता है। सफलताके लिये चेष्टा आवश्यक है। कभी-कभी यह भी देखनेमें आता है कि व्यक्तिने सारी सम्भव चेष्टाएँ कीं, परंतु सफलता उसे मुँह चिढ़ाती दूर खड़ी है; क्योंकि सफलतामें दैवी विधानकी भी भूमिका होती है, दैवी विधान सफलताका पाँचवाँ कारण है—'**दैवं चैवात्र पञ्चमम्।**'

ईश्वर, दैव, भाग्य, प्रारब्ध, योग—नाम कुछ भी हो किंतु वह एक ऐसी अदृश्य शक्ति अवश्य है, जिसकी भूमिका हमारे जीवनमें होती है। कभी-कभी हम बहुत प्रयत्न करते हैं, परंतु कुछ नहीं पाते और किसी समय बिना चेष्टाके ही हमारे कार्य सफल हो जाते हैं। जब पाँचवाँ कारण अनुकूल रहता है तो सफलता अल्प प्रयत्नसे ही मिल जाती है, अन्यथा हमारे प्रयत्न निष्फल होते रहते हैं।

सफलता-असफलताका चक्र जीवनमें चलता रहता है। गीता इसके प्रति हमें सम्यक् दृष्टि प्रदान करती है। हमें सम्पूर्ण चेष्टाएँ करनी चाहिये, पूरा प्रयत्न करना चाहिये। इसके बाद कर्मफलके रूपमें जो भी प्राप्त होता है, उसे प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये। जिसे प्राप्त करनेमें प्रसन्नताका अनुभव हो, उसे प्रसाद कहते हैं, परंतु इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि हम फिर प्रयत्न नहीं करेंगे या यदि कर्ममें त्रुटि रह गयी है तो उसका सुधार नहीं करेंगे। प्रसन्नता एवं निर्लिप्तताके साथ प्रयत्न गीताके दर्शनमें समाहित है। यदि हम दुःखी एवं कुण्ठित मनसे चेष्टा करते हैं तो हमारी यात्रा अशान्तिसे भरी होती है। इसके विपरीत यदि हम प्रसन्नतापूर्वक प्रयत्न करते हैं तो मंजिल न मिलनेपर भी यात्रा सुखद होती है। अशान्तिके साथ प्रयत्न करनेपर मंजिल प्राप्त होनेकी स्थितिमें भी यात्रा तो अशान्ति और दुःखभरी ही होती है। अतः हमें प्रसन्नतापूर्वक पूरा प्रयत्न करना चाहिये। अपनी कोशिश पूरी हो जानेपर तुरन्त तटस्थ हो जाना चाहिये और जो भी फल हमें परमात्मा दे, उसे कृतज्ञताके साथ प्रसादरूपमें स्वीकार करना चाहिये।

चित्तशुद्धिका साधन

प्रश्न—चित्तशुद्धिका साधन क्या है और यह कब समझना चाहिये कि चित्त शुद्ध हो गया?

उत्तर—चित्तशुद्धिके लिये दो बातोंकी आवश्यकता है—विवेक और ध्यान। केवल आत्मा और अनात्माका विवेक होनेपर भी यदि ध्यानके द्वारा उसकी पुष्टि नहीं की जायगी तो वह स्थिर नहीं रह सकेगा। इसके सिवा इस बातकी भी बहुत आवश्यकता है कि हम दूसरोंके दोष न देखकर निरन्तर अपने चित्तकी परीक्षा करते रहें।

जिस समय चित्तमें राग-द्वेषका अभाव हो जाय और चित्त किसी भी दृश्य पदार्थमें आसक्त न हो, उस समय समझना चाहिये कि चित्त शुद्ध हुआ। परंतु राग-द्वेषसे मुक्त होनेके लिये परमात्मा और महापुरुषोंके प्रति राग होना तो परम आवश्यक है।

प्रश्न—राग-द्वेष किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस समय मनुष्य नीतिको भूल जाय, उसे सदाचारके नियमोंका कोई ध्यान न रहे, तब समझना चाहिये कि वह राग-द्वेषके अधीन हुआ है—राग-द्वेषका मूल अहंकार है। अहंकारके आश्रित ही ममता और परत्वकी भावनाएँ रहती हैं। ममता ही राग है और परत्व ही द्वेष है। [**सन्तप्रवर श्रीउड़ियाबाबा**]

गोमूत्रके चमत्कार

(१) गोमूत्रसे रोगमुक्ति

कई वर्ष पुरानी बात है। ग्रह-दशा या किसी पूर्व कृत पापके कारण मैं शारीरिक तथा मानसिक दृष्टिसे बीमारियोंके चंगुलमें फँसता चला गया था। जिसके कारण मैं अहर्निश व्याकुल एवं अव्यवस्थित-चित्त रहा करता था और साथ ही मेरी चिन्ता बढ़ती जा रही थी। चौबीसों घण्टेकी इस चिन्ताने मेरे शरीरको जर्जर करके रख दिया था। मैं भोजनके बाद सोनेका प्रयास करता, किंतु स्वप्नोंसे घिर जाता।

पूरा शरीर रोगोंका घर बन गया था। प्राय: घुटनोंमें दर्द रहने लगा। रात-दिन सिरमें पीड़ा रहती। पाचनशक्ति नष्टप्राय थी। स्मरणशक्ति लुप्त हो रही थी। मानसिक संतुलन बिगड़ जानेसे हर समय क्रोधका आवेश रहता, जिससे मैं अधिकाधिक चिड़चिड़ा हुआ जा रहा था। चिन्ता और चिड़चिड़ेपनसे शरीरका रंग बिलकुल काला पड़ गया था। शरीरमें खुजली होने लगी थी। मेरा पूरा शरीर अस्थिमात्रका ढाँचा बन गया था।

मैंने शरीरके अनेक अवयवोंकी डॉक्टरी जाँच करायी, किंतु कोई भी बीमारी पकड़में नहीं आयी। आयुर्वेदिक, एलोपैथिक तथा होम्योपैथिक तीनों प्रकारकी दवाएँ लीं, किंतु रोगका निवारण सम्भव नहीं हो सका। गणेशपुरी (महाराष्ट्र) जाकर गन्धकके पानीसे कई दिनोंतक स्नान किया, लेकिन चर्मरोगपर तब भी नियन्त्रण नहीं पाया जा सका।

जीवनसे निराश होकर मैंने 'हारेको हरिनाम'का सहारा लिया और तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। द्वारका एवं रामेश्वरकी तीर्थयात्राके बाद बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्तरी आदिकी यात्रा करता हुआ ऋषिकेश पहुँचा। वहाँ एक ऐसे सज्जनसे भेंट हुई, जिन्होंने आश्वासनपूर्वक बड़ी ही दृढ़ताके साथ कहा—'आप गोमूत्रका प्रयोग करें, समस्त व्याधियोंसे पूरी तरह मुक्त हो जायँगे।' उन्होंने मुझे बताया कि एक कप चायके बराबर गोमूत्रका सेवन किया जाय। उसे कपड़ेकी आठ तह करके छान लेना चाहिये और धीरे-धीरे अभ्याससे इसे बढ़ाकर पाव-डेढ़ पाव तक लिया जा सकता है। कुछ गोमूत्रको धूपमें रखकर अगले दिन उसे शरीरपर मालिश करनेसे विविध रोगोंसे छुटकारा मिल सकता है।

मैंने पहले दिन एक कप गोमूत्र पीया तो मुझे उलटी हो गयी। मैंने दृढ़ संकल्प लेकर दूसरे दिन फिर पीया तो वह पेटमें जाकर पच गया। सूर्यकी किरणोंके सामने रखे गोमूत्रसे मैंने पूरे शरीरमें मालिश भी प्रारम्भ कर दी। इस मालिशसे शरीरकी कड़ी चमड़ी नरम होने लगी।

गोमूत्रने कुछ ही दिनोंमें अपना चमत्कार दिखाना शुरू कर दिया। शरीरसे कफ निकलना शुरू हो गया। खाँसते-खाँसते मेरा बुरा हाल हो जाता था। गोमूत्रके सेवनसे खाँसी भी कम होती गयी। मैंने पारिवारिक चिकित्सकसे जाँच करायी तो उन्होंने बताया कि आपके स्वास्थ्यमें काफी बदलाव है तथा रोगोंपर तेजीसे नियन्त्रण हो रहा है। किंतु उन्होंने कुछ दिन गोमूत्र-सेवन रोक देनेका सुझाव दिया। मैं दुबिधामें पड़ गया कि क्या करूँ? ऐसी स्थितिमें 'आखिर-अन्तिम राम-सहारा' इस संतवाणीका मैंने सहारा लिया। मुझे उसी समय एक संतद्वारा गोमाताके दुग्ध तथा गोमूत्रके महत्त्वपर दिये हुए प्रवचनकी कुछ पंक्तियोंने निरन्तर गोमूत्र-सेवन करते रहनेको प्रेरित किया। उसी प्रेरणाके वशीभूत हो मैं प्रतिदिन गोमूत्र, गोदुग्ध, तथा गायके दूधका दही-मट्ठा आदि प्रयोग करने लगा। एक वर्षके इस निरन्तर प्रयोगसे मेरा शरीर समस्त रोगोंसे पूरी तरह मुक्त तो हो ही गया मानसिक तनाव, क्रोध तथा अन्य मानसिक व्याधियोंसे भी गोमाताने मुझे मुक्ति दिला दी।

मैंने यह भी अनुभव किया कि देशी भारतीय गायका ही मूत्र गुणकारी होता है। बच्चोंकी घुट्टीमें यदि गोमूत्रकी कुछ बूँदें मिलाकर पिलायें तो बच्चा अनेक रोगों—विशेषकर पेटके विकारसे मुक्ति पा लेता है।

लगातार गोमूत्रका सेवन करनेसे रक्तका दबाव स्वाभाविक हो जाता है।

गोमूत्र पेटके समस्त विकारों, लीवरकी खराबीको दूरकर शरीरमें स्फूर्ति पैदा करता है।

गोमूत्र सबेरे खाली पेट सेवन करे तथा उसके बाद एक घण्टेतक कुछ न ले।

मैं गौमाताकी कृपासे पूरी तरह नीरोग होकर कई वर्षोंसे अपनी जन्मस्थली बिहारका त्यागकर उत्तर भारतके प्रमुख तीर्थ गढ़मुक्तेश्वरके व्रजघाट-स्थित माँ गंगाके तटपर रहकर तीथसेवन कर रहा हूँ। गंगा माँके स्नान, उसके पावन जलके सेवन एवं एकान्तवाससे मुझे जो हार्दिक संतोष प्राप्त हो रहा है, उसका मैं वर्णन नहीं कर पाता। क्योंकि यह सब गोमूत्रके सेवन एवं गोमाताकी कृपाका ही फल है। किंतु उस समय मुझे हार्दिक वेदना होती है, जब मैं गोवंशकी नृशंस हत्या किये जानेकी छूट तथा गोमांससे विदेशी मुद्रा कमाये जानेकी बढ़ती प्रवृत्तिके समाचार सुनता हूँ। स्थूल दृष्टिसे सोचनेपर भी गोवंश-जैसी अमूल्य निधिके साथ यह अत्याचार अविलम्ब बन्द किया ही जाना चाहिये। इसीमें हम सभीका कल्याण है।—**सोहनलाल अग्रवाल**

(२) गोमूत्रकी अलौकिक शक्ति

मेरी ११ वर्षीया लड़कीके हाथ-पैरमें बहुत दिनोंसे खुजलीकी शिकायत रहती थी। हमने उसे चर्मरोग-विशेषज्ञ एक डॉक्टरको दिखाया। उनकी दवासे कुछ आराम तो हुआ, किंतु जबतक दवाई चलती थी, तभीतक आराम रहता था, बन्द होनेपर २-४ महीनेके बाद पुनः खुजली शुरू हो जाती थी। हम सभी इस रोगसे अत्यन्त चिन्तित थे। मेरी लड़की भी परेशान हो गयी थी। हमने 'कल्याण' के 'गोसेवा-अंक'में गोबर तथा गोमूत्रसे लाभ-सम्बन्धी अनेक चमत्कारी घटनाएँ पढ़ीं। जिनमें अनेक बीमारियोंमें गोमूत्रके सेवनसे बीमारी खत्म होनेके बारेमें लिखा हुआ है। उन घटनाओंको पढ़कर मनमें यह प्रेरणा हुई कि क्यों न एक बार गोमूत्रका प्रयोग किया जाय। यह बात सभीको जँच गयी। दूसरे दिनसे ही हमने भी बच्चीको गोमूत्र दवाके रूपमें देना शुरू किया तथा हाथ-पैरमें इसकी मालिश भी शुरू की। एक सप्ताह होते-होते गोमूत्रका ऐसा चमत्कार हुआ कि बीमारी धीरे-धीरे कम होने लगी। अब हमने दुगुने उत्साह तथा पूर्ण विश्वासके साथ गोमूत्रका प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। उसका फल यह हुआ कि लगभग एक महीना होते-होते खुजली एकदम समाप्त हो गयी। अब लगभग ८ महीने होने जा रहे हैं, किंतु बीमारीका नामोनिशानतक नहीं है, कोई दाग वगैरह भी नहीं है। यह देखकर हमारे परिवार तथा मुहल्लेवालोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। इस प्रकार गाय एवं गोमूत्र हमारे लिये वरदान सिद्ध हुआ।—**ज्ञान प्र० ला०**

गोग्रास-दानकी महिमा

बैलोंको जगत्का पिता समझना चाहिये और गौएँ संसारकी माता हैं। उनकी पूजा करनेसे सम्पूर्ण पितरों और देवताओंकी पूजा हो जाती है। जिनके गोबरसे लीपनेपर सभा-भवन, पौंसले, घर और देवमन्दिर भी शुद्ध हो जाते हैं, उन गौओंसे बढ़कर और कौन प्राणी पवित्र हो सकता है? जो मनुष्य एक सालतक स्वयं भोजन करनेसे पहले प्रतिदिन दूसरोंकी गायको मुट्ठीभर घास खिलाया करता है, उसको प्रत्येक समय गौकी सेवा करनेका फल प्राप्त होता है। [महाभारत, आश्वमेधिकपर्व]

जिस व्यक्तिके पास श्राद्धके लिये कुछ भी न हो, वह यदि पितरोंका ध्यान करके गोमाताको श्रद्धापूर्वक घास खिला दे, तो उसको श्राद्धका फल मिल जाता है—'तृणानि वा गवे दद्यात्'। [निर्णयसिन्धु]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९।५२ बजेतक	शुक्र	मूल दिनमें ७।३१ बजेतक	२५ जून	**मूल** दिनमें ७।३१ बजेतक
द्वितीया ,, ७।५९ बजेतक	शनि	पू०षा० प्रात: ६।१७ बजेतक	२६ ,,	**मकरराशि** दिनमें १२।३ बजेसे।
तृतीया सायं ६।२९ बजेतक	रवि	उ०षा० ,, ५।२२ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।१४ बजेसे सायं ६।२९ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।३३ बजे।
चतुर्थी ,, ५।२१ बजेतक	सोम	धनिष्ठा रात्रिशेष ४।३७ बजेतक	२८ ,,	**कुम्भराशि** सायं ४।४१ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें सायं ४।४१ बजे।
पंचमी दिनमें ४।४१ बजेतक	मंगल	शतभिषा ,, ४।५७ बजेतक	२९ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, ४।३२ बजेतक	बुध	पू०भा० अहोरात्र	३० ,,	**भद्रा** दिनमें ४।३२ बजेसे रात्रिशेष ४।४३ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें ११।३३ बजे।
सप्तमी ,, ४।५४ बजेतक	गुरु	पू०भा० प्रात: ५।४५ बजेतक	१ जुलाई	× × × ×
अष्टमी सायं ५।४५ बजेतक	शुक्र	उ०भा ,, ७।६ बजेतक	२ ,,	**मूल** प्रात: ७।६ बजेसे।
नवमी रात्रिमें ७।५ बजेतक	शनि	रेवती दिनमें ८।५४ बजेतक	३ ,,	**मेषराशि** दिनमें ८।५४ बजेसे, **पंचक** समाप्त दिनमें ८।५४ बजे।
दशमी ,, ८।४५ बजेतक	रवि	अश्विनी ,, ११।६ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।५५ बजेसे रात्रिमें ८।४५ बजेतक, **मूल** दिनमें ११।६ बजेतक।
एकादशी ,, १०।४१ बजेतक	सोम	भरणी ,, १।३३ बजेतक	५ ,,	**वृषराशि** रात्रिमें ८।१२ बजेसे, **योगिनी एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, १२।४२ बजेतक	मंगल	कृत्तिका ,, ४।१० बजेतक	६ ,,	**पुनर्वसुका सूर्य** दिनमें २।५८ बजे।
त्रयोदशी ,, २।३९ बजेतक	बुध	रोहिणी सायं ६।४५ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।३९ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिशेष ४।२० बजेतक	गुरु	मृगशिरा रात्रिमें ९।९ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।३० बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें ७।५७ बजेसे।
अमावस्या अहोरात्र	शुक्र	आर्द्रा ,, ११।१५ बजेतक	९ ,,	**श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या प्रात: ५।४२ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, १२।५३ बजेतक	१० ,,	**अमावस्या, कर्कराशि** सायं ६।२९ बजेसे।

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२१, सूर्य उत्तरायण-दक्षिणायन, ग्रीष्म-वर्षा-ऋतु, आषाढ़-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा प्रात: ६।३६ बजेतक	रवि	पुष्य रात्रिमें २।६ बजेतक	११ जुलाई	**मूल** रात्रिमें २।६ बजेसे।
द्वितीया ,, ७।० बजेतक	सोम	आश्लेषा ,, २।४७ बजेतक	१२ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें २।४७ बजेसे, **जगदीश-रथयात्रा।**
तृतीया ,, ६।५२ बजेतक	मंगल	मघा ,, २।५८ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** सायं ६।३३ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल** रात्रिमें २।५८ बजेतक।
चतुर्थी ,, ६।१४ बजेतक	बुध	पू०फा० ,, २।४१ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** प्रात: ६।१४ बजेतक।
षष्ठी रात्रिमें ३।३९ बजेतक	गुरु	उ०फा० ,, २।० बजेतक	१५ ,,	**कन्याराशि** दिनमें ८।३१ बजेसे।
सप्तमी ,, १।४९ बजेतक	शुक्र	हस्त ,, १२।५८ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।४९ बजेसे, **कर्क-संक्रान्ति** रात्रिशेष ४।७ बजे, **दक्षिणायन प्रारम्भ, वर्षा-ऋतु प्रारम्भ।**
अष्टमी ,, ११।४२ बजेतक	शनि	चित्रा ,, ११।४० बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।४५ बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें १२।१९ बजेसे।
नवमी ,, ९।२४ बजेतक	रवि	स्वाती ,, १०।१० बजेतक	१८ ,,	× × × ×
दशमी सायं ६।५७ बजेतक	सोम	विशाखा ,, ८।३२ बजेतक	१९ ,,	**वृश्चिकराशि** दिनमें २।५६ बजेसे।
एकादशी दिनमें ४।२८ बजेतक	मंगल	अनुराधा सायं ६।५१ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** प्रात: ५।४३ बजेसे दिनमें ४।२८ बजेतक, **श्रीहरिशयनी एकादशीव्रत** (सबका), **मूल** सायं ६।५१ बजेसे।
द्वादशी दिनमें २।१ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा ,, ५।१४ बजेतक	२१ ,,	**धनुराशि** सायं ५।१४ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, ११।४२ बजेतक	गुरु	मूल दिनमें ३।४५ बजेतक	२२ ,,	**मूल** दिनमें ३।४५ बजेतक।
चतुर्दशी ,, ९।३३ बजेतक	शुक्र	पू०षा० ,, २।२६ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।३३ बजेसे रात्रिमें ८।३६ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें ८।११ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, ७।४० बजेतक	शनि	उ०षा० ,, १।२५ बजेतक	२४ ,,	**पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा।**

साधनोपयोगी पत्र

(१)

स्त्रीसंगका त्याग आवश्यक है

सादर हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। समाचार जाने। आपने अपने मनकी जो स्थिति लिखी, उसपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि आपके मनमें अभी छिपी हुई प्रबल वासना है। यह स्थिति केवल आपकी ही नहीं है, बहुतोंकी है। मनकी इस दशामें आपके लिये यही श्रेयस्कर है कि आप बार-बार रोकर भगवान्‌से प्रार्थना करें। प्रार्थनामें बड़ी शक्ति है। इससे असम्भव मानी जानेवाली बात भी भगवत्कृपासे सम्भव हो जाती है, इसपर आप विश्वास करें।

जहाँतक हो, स्त्रीचिन्तन और स्त्रीदर्शनका सर्वथा त्याग करें! शास्त्रोंमें आठ प्रकारके मैथुन बतलाये हैं—

श्रवणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च कार्यनिर्वृत्तिरेव च॥

'स्त्री-सम्बन्धी बात सुनना, कहना, स्त्रियोंको देखना, उनके साथ खेलना, एकान्तमें बात करना, प्राप्त करनेका निश्चय करना, प्रयत्न करना और सहवास करना।'

इन सभीसे बचना आवश्यक है। स्त्री-सम्बन्धी साहित्यका पढ़ना, पत्रोंमें सिनेमाकी अभिनेत्रियोंके चित्र देखना और सिनेमा देखना—इस दुर्वासनाको बढ़ानेमें बहुत सहायक होते हैं। इनसे मनमें विकार पैदा होता है। स्त्रियोंके साथ बात करनेसे विकार बढ़ता है, स्पर्श करनेपर वह मानो पूरा बढ़ जाता है। इसीलिये स्त्री-दर्शनतकका निषेध किया गया है और उसे पाप माना गया है।

आजकल जो स्कूल-कालेजोंमें बालक-बालिकाएँ और स्त्री-पुरुष एक साथ पढ़ते हैं, यह बहुत ही हानिकारक है। देखने और बातचीत करते समय मनमें जो एक सुखासक्ति-सी प्रतीत होती है, मन वहाँसे हटना नहीं चाहता—यही छिपे विकारका लक्षण है।

मनमें रहनेवाली वासनाको यदि पनपनेका अवसर नहीं मिलता, उसे पुष्ट होनेको खूराक नहीं मिलती और लगातार विरोधी वातावरण मिलता है तो वह धीरे-धीरे क्षीण होकर मर जाती है। वैसे ही जैसे दीर्घकालतक जल न मिलनेपर वृक्षकी जड़ सूख जाती है और वह मर जाता है; परंतु यदि उसे जल मिलता रहा तो वह सदा हरा-भरा रहेगा एवं बढ़ेगा। उसमें यथासमय फूल और फल भी पैदा होंगे। इसी प्रकार पुरुषकी छिपी कामवासनामें यदि देखना, सुनना, एकान्तमें मिलना और बातचीत करना चलता रहता है तो वासना बढ़कर प्रत्यक्ष कामनाका रूप धारण कर लेती है और फिर मनुष्यका पतन हो जाता है।

इसलिये जहाँतक बने, सात्त्विक साहित्यका सेवन करना, सात्त्विक पुरुषोंके संगमें रहना, निरन्तर सात्त्विक कार्योंमें लगे रहना, इन्द्रियोंके द्वारा मनके सामने सदा-सर्वदा सत्-वस्तुओंको ही रखना, जिससे वह सात्त्विक चिन्तनमें ही लगा रहे, और भगवान्‌के नित्य स्मरणका अभ्यास करना चाहिये। इससे कामवासनाका नाश होता है।

प्रतिदिन आदित्यहृदय और सूर्यकवचका पाठ करने, गायत्री जपने तथा सूर्यदेवसे प्रार्थना करनेसे भी कामवासनाका नाश होता है; परंतु केवल पाठ-प्रार्थना करे तथा स्त्रियोंका संग न छोड़े तो उससे वैसे ही विशेष लाभ नहीं होता, जैसे दवा लेनेके साथ-साथ बार-बार कुपथ्य करनेवाले रोगीको लाभ नहीं होता। श्रीमद्भागवतमें तो कहा है—

'स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान्।'

'स्त्रियोंका ही नहीं, स्त्रियोंके संग करनेवालोंका भी संग दूरसे ही त्याग देना चाहिये।'

(२)

प्रसन्नता-प्राप्तिका उपाय

सप्रेम हरिस्मरण! संसारमें रहते हुए चित्तकी प्रसन्नताका उपाय पूछा, सो इसका उपाय भगवान्‌ने श्रीमद्भगवद्गीतामें बतलाया है—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

(२।६४)

'वशमें किये हुए शरीर, इन्द्रिय और मनसे जो पुरुष राग-द्वेषसे मुक्त होकर विषयोंका सेवन करता है, उसे प्रसाद (प्रसन्नता) की प्राप्ति होती है।' और इस

प्रसाद (प्रसन्नता) से सारे दु:खोंका नाश हो जाता है—

'प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते॥'

(गीता २। ६५)

जबतक मनुष्य राग-द्वेषके वशमें है और जबतक मन-इन्द्रियोंका गुलाम है, तबतक उसके शरीर, इन्द्रिय और मनसे ऐसे कार्य होते ही रहते हैं, जो उसकी सारी प्रसन्नताका नाश करके उसका पतन कर देते हैं।

विषयोंमें रागी (विषयासक्त) मनुष्य जिह्वाके स्वादवश गुरुपाक पदार्थोंका अधिक भोजन कर लेता है अथवा राजस-तामस पदार्थोंको खा लेता है, जिससे शरीरमें विकार होते हैं और प्रसाद (प्रसन्नता)का नाश होता है।

राग-द्वेषयुक्त मनुष्य लोगोंके दोष देखने और उनकी स्तुति-निन्दा करनेमें रसका अनुभव करता है; अत: उसके द्वारा व्यर्थ, कटु, असत्य, अहितकर भाषण होता रहता है। फलस्वरूप उसके प्रसादका नाश होता है।

राग-द्वेषयुक्त मनुष्य घर-द्वार, परिवार-परिजन, धन-सम्पत्ति, यश-कीर्ति और शरीरके आराम-भोग आदिमें राग करके चोरी, जुआ, दुराचार, असत्य, अनाचार, दुर्व्यसन, कुसंग और कुप्रवृत्तिमें प्रवृत्त हो जाता है और इससे उसके प्रसादका नाश हो जाता है।

राग-द्वेषके कारण मनुष्य अपने स्वार्थमें बाधक समझकर लोगोंसे वाद-विवाद, वैर-विरोध, मामले-मुकदमे, उनका अपमान-तिरस्कार, उन्हें दु:ख तथा हानि पहुँचानेकी चेष्टा और दु:ख तथा हानि होनेपर प्रसन्नताका अनुभव करता है तथा दूसरोंके स्वत्व, धन, जमीन, स्त्री, मान, यश तथा अधिकारपर मन चलाता है एवं उन्हें हथियानेका प्रयत्न करता है। इससे उसके प्रसादका नाश होता है।

बुद्धिमान् मनुष्य वही है, जो राग-द्वेषके वशमें नहीं होता तथा इन्द्रियोंको एवं मनको अपने वशमें रखकर शास्त्र-विहित विषयोंका भगवान्‌की प्रीतिके लिये सेवन करता है।

शरीरको वशमें रखकर उसके द्वारा प्राणिमात्रकी सेवा, भगवान्, संत तथा गुरुजनोंकी यथायोग्य वन्दना, पूजा और सेवा करनी चाहिये।

वाणीको वशमें रखकर उसके द्वारा घबराहट उत्पन्न न करनेवाले सत्य, प्रिय और हितकर वचन बोलने चाहिये तथा भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम, रहस्य, प्रेम आदिका यथायोग्य कथन तथा जप-कीर्तन करना चाहिये।

मनको वशमें रखकर उसके द्वारा शुभचिन्तन, भगवच्चिन्तन करना चाहिये। उसमें दया, प्रेम, सौहार्द, ममता, तितिक्षा, अहिंसा, प्रसन्नता, कोमलता, मननशीलता, पवित्रता आदि भावोंका विकास, संरक्षण तथा संवर्द्धन करना चाहिये।

और इस प्रकार तन, वचन और मनको नित्य-निरन्तर शुभके साथ जोड़े रखना चाहिये तथा यह सब भी करना चाहिये निष्कामभावसे, केवल श्रीभगवान्‌की प्रीतिके लिये ही। एवं यही चाहना चाहिये कि इस तरह विशुद्ध भगवत्-प्रीतिके लिये तन, वचन तथा मनसे सेवन-भजन करनेमें उत्तरोत्तर उल्लास, उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति बढ़ती रहे। प्रसन्नता या सच्चे प्रसादका यही लक्षण है कि उसमें मन-बुद्धि सर्वथा भगवान्‌के अर्पण हुए रहते हैं। इन्द्रियाँ और शरीर भगवान्‌की सेवाके लिये अपनेको समर्पण कर देते हैं। अशुभका सर्वथा परित्याग हो जाता है। परंतु जबतक मनुष्य राग-द्वेषरूपी लुटेरोंके वशमें हुआ रहता है, तबतक वह शुभके साथ पूर्णरूपसे संयुक्त नहीं हो सकता—भगवान्‌में चित्तको सर्वथा संलग्न नहीं कर सकता।

परंतु राग-द्वेषके छूटनेका उपाय भी भगवान्‌का भजन ही है। भगवद्भजनसे ही, भगवान्‌के नित्य अपराभूत अपरिमित बलसे ही मनुष्य राग-द्वेषरूपी प्रबल डाकुओंसे छुटकारा पा सकता है।

अतएव मनुष्यको चाहिये कि वह भगवान्‌के नाम-रूप, लीला, गुण, धाम आदिमें राग करे। उनके असीम सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्य-सागरमें बार-बार डुबकी लगाना आरम्भ कर दे और भगवद्विरोधी—भगवान्‌से हटानेवाले विषयोंमें द्वेष करे। परिणाम यह होगा कि उसके राग-द्वेषका नाश हो जायगा। फिर न तो उसके हृदयमें द्वेष रहेगा और न उस द्वेषका प्रतिद्वन्द्वी राग ही रहेगा। उस समय भगवान्‌में उसकी सर्वत्र द्वेषहीन विशुद्ध अनुरक्ति हो जायगी—उन्हींमें अनन्य राग हो जायगा। इसी 'राग'का नाम 'भगवत्प्रेम' है। इसीकी प्राप्तिके लिये भक्तजन सदा लालायित रहा करते हैं। भगवत्प्रेमके सामने महापुरुष मुक्तिको भी तुच्छ समझकर सदा इसके सेवनमें लगे रहते हैं।

सुकृति निरादरि भगति लुभाने।

कृपानुभूति

संत गजानन महाराजकी कृपा

महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध सन्त 'श्रीगजानन महाराज' के नामसे 'कल्याण' के अनेक पाठक भलीभाँति परिचित होंगे। कुछ समय पूर्व उनका संक्षिप्त परिचय 'कल्याण' के एक मासिक अंकमें चित्रसहित प्रकाशित भी हो चुका है। मैं और मेरे मायकेका पूरा परिवार गुरु और इष्टके रूपमें सदासे उन्हींकी आराधना करता रहा है। हम सब भाई-बहनोंने उनकी कृपा जीवनमें अनेक अवसरोंपर अनुभव की है। उन अनुभवोंमेंसे यहाँ मैं उनकी कृपाका एक प्रसंग बता रही हूँ—

बात अगस्त २००९ ई०की है। हमारे पौत्रकी सगाईका समारोह मुम्बईमें आयोजित किया गया था, जिसे सम्पन्न करनेके लिये हम पति-पत्नी और पुत्र-पुत्रवधू दिल्लीसे मुम्बई प्रस्थान कर रहे थे। यात्रा विमानसे होनी थी, अत: हम सब यथासमय दिल्लीके घरेलू उड़ानोंवाले विमानतलपर पहुँच गये थे। उड़ान दोपहर बारह बजेकी थी, अत: पूर्वकी तमाम औपचारिकताएँ पूरीकर हम प्रतीक्षास्थलपर बैठे हुए थे। मुझे उस समय लघुशंका जानेकी आवश्यकता हुई, अत: टॉयलेटका रास्ता पूछकर मैं उस तरफ जाने लगी। पुत्रने मुझे सावधान किया कि उड़ानका समय हुआ जा रहा है, अत: जल्दी वापस आना और रास्ता ठीकसे याद रखना। मैं भी उसके कथनानुसार रास्तेके सब चिह्न ध्यानपूर्वक देखते हुए जा रही थी ताकि उन्हीं चिह्नोंको देखते हुए सही रास्तेसे लौट सकूँ, परंतु टॉयलेटसे बाहर आनेपर न जाने कैसा मतिभ्रम हुआ और मैं गलत दिशामें चल पड़ी। परिणाम यह हुआ कि अपने परिवारजनोंसे बहुत दूर किसी अनजाने स्थानपर आ गयी। यह बात ध्यानमें आनेपर मैं घबरा गयी। घड़ी देखा तो साढ़े ग्यारहसे ऊपर हो चुके थे। उड़ानसे कुछ पहले एक बस प्रतीक्षास्थलपर आती है, जो वहाँसे यात्रियोंको पिक-अप करके विमानतक छोड़ आती है। उस बसके आनेका समय हो चुका था और मैं भूली-भटकी न जाने कहाँ घूम रही थी। न मेरे पास मोबाइल था और न ही मुझे पुत्रका मोबाइल नम्बर याद था। फिर हवाई यात्राका भी मेरे लिये यह पहला ही अवसर था। मैं समयपर अपने परिवारजनोंतक न पहुँच सकी तो क्या-क्या स्थितियाँ उत्पन्न होंगी—इन आशंकाओंसे और अत्यधिक घबराहटसे मेरी मनोदशा और मुझे विलम्ब होते देख उधर मेरे परिवारकी मनोदशा कैसी हो रही होगी। इसका अनुमान लगाया जा सकता है। मैं बहत्तर वर्षीय वृद्धा पूर्णत: असहाय होकर अपने माता-पिता, बन्धु-सखा श्रीगजानन महाराजको आर्त हृदयसे पुकारने लगी। मेरी अन्तस्‌की पुकार चल ही रही थी कि एक अपरिचित वृद्ध सज्जन, जो कि ठेठ महाराष्ट्रीय वेशभूषा धारण किये हुए थे, मेरे पास आये और मराठी भाषामें मुझसे बोले—बहनजी! आपको मुम्बई जाना है क्या? मैंने बड़ी व्यग्रताके साथ उत्तर दिया—'हाँ, हाँ।' 'मुझे भी मुम्बई जाना है। चलिये, मैं आपको सही जगह पहुँचा दूँ। मैं आपके घरवालोंको जानता हूँ। उनसे आपको मिला दूँ।' मुझे उनके आश्वासक शब्दोंसे ऐसा दिलासा मिला, मानो डूबतेको तिनकेका सहारा मिल गया हो। मैं उनके पीछे-पीछे चल पड़ी। भीड़भाड़ भरी एयरपोर्टकी उस लम्बी-चौड़ी विस्तीर्ण इमारतके न जाने किस रास्तेसे लाकर उन्होंने मुझे मेरे परिवारसे मिला दिया। एक-दूसरेको देखकर हम सबकी जानमें जान आयी। अपने परिजनोंको सामने पाकर मुझे इतनी खुशी हुई कि हर्षातिरेकमें मैं अपने उपकारकर्ता उन सज्जनको भी भूल गयी। न मुझे यह देखनेका भान रहा कि वे कहाँ गये, न ही उन्हें धन्यवाद देनेकी सुध रही।

विक्षिप्त मन:स्थितिके शान्त होनेपर एक-एक करके अनेक प्रश्न मनमें उठने लगे, ये सज्जन कौन थे? मेरे घरवालोंको कैसे जानते थे? हम तो उन्हें नहीं जानते, अगर वे हमें जानते थे, तो फिर घरवालोंसे मिले क्यों नहीं? चुपचाप भीड़में गुम क्यों हो गये?

अन्तमें मैं समझ गयी, वे वृद्ध सज्जन अन्य कोई नहीं; परमदयालु, दीनवत्सल करुणानिधान श्रीगजानन महाराज ही थे। अपने शरणापन्न जनकी रक्षाके लिये वे सहायतार्थ दौड़े चले आये। उनके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम!—**मंगला कासलीकर**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

माँका अनूठा भक्त

आजके इस भौतिक युगमें यह आम बात है कि ज्यादातर लोग सिर्फ अपनी पत्नी और अपने बच्चोंकी आवश्यकताकी पूर्तिमें ही लगे हुए हैं और सिर्फ उनतक ही अपनी सोचको केन्द्रित किये हुए हैं। परिवारके वृद्ध माता-पिता या तो अपने बच्चोंसे अलग रहकर जिन्दगीका संघर्ष कर रहे हैं या अगर साथ भी रह रहे हैं तो अपनोंकी ही उपेक्षा और जिल्लतभरी जिन्दगी जीनेको मजबूर हैं। इस घृणित परिप्रेक्ष्यमें एक पुत्रका अपनी बूढ़ी माँकी उत्कृष्ट सेवाका एक अद्वितीय और अनुकरणीय उदाहरण अभी हालहीमें सामने आया है।

३९ वर्षीय कृष्णकुमार बैंगलोरकी किसी कम्पनीमें सेवारत हैं। उनकी ७० वर्षीया माँ चूडारत्ना अपने पति दक्षिणामूर्तिके देहावसानके बाद मैसूरमें एकाकी जीवन व्यतीत कर रही थीं। जीवनभर वे अपने पतिके संयुक्त परिवारमें रहती हुई अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियोंका पालन करती रहीं। घरकी चहारदिवारीतक ही उनकी जिन्दगी सिमटी थी।

एक बार कृष्णकुमार माँसे मिलने मैसूर गये हुए थे। बात-बातमें माँने उनसे कर्नाटकके हम्पी और हालेबीदु नामक स्थानोंके दर्शनकी हार्दिक इच्छा व्यक्त की। गहराईसे इसपर विचार करते हुए कृष्णकुमारको माँके प्रति अपने सर्वोच्च कर्तव्यका बोध हुआ। इसके बाद उन्होंने जो संकल्प लिया, वह आजके युगमें एक पुत्रकी माँके प्रति प्रेम और समर्पणकी पराकाष्ठा कही जा सकती है। कृष्णकुमारने मन-ही-मन माँको एक 'माँ-सेवा-संकल्पयात्रा' पर ले जानेकी भीष्म-प्रतिज्ञा कर ली।

अप्रैल २०१७ में यात्राके प्रथम चरणमें उन्होंने माँको बैंगलोरसे कश्मीरकी यात्रा कारद्वारा करवायी। तत्पश्चात् वर्ष २०१८ के आरम्भमें उन्होंने यात्राका दूसरा चरण प्रारम्भ किया, जिसमें विन्ध्याचलके सभी दक्षिणी राज्योंके लगभग सभी तीर्थस्थलोंकी यात्राकी बृहद् योजना थी। बूढ़ी माँको ज्यादा पैदल न चलना पड़े और दूरदराजके स्थानोंपर ले जानेमें सुगमता हो, इसके लिये उन्होंने अपने चेतक स्कूटरपर ही यात्रा करनेका अनूठा निश्चय किया। माँके आरामके लिये स्कूटरमें आवश्यक बदलाव किये। पूरा आवश्यक सामान तथा खानपानकी सामग्री भी स्कूटरपर ही लादी गयी।

सात महीनोंसे भी ज्यादा चली इस यात्रामें उन्होंने माँके साथ कर्नाटक, तमिलनाडु, केरल, आन्ध्रप्रदेश, तेलंगाना और महाराष्ट्र राज्योंके लगभग सभी तीर्थस्थलोंकी २५००० किलोमीटर लम्बी यात्रा की। इतने लम्बे प्रवासमें भी वे कभी किसी होटलमें नहीं बल्कि मन्दिरों तथा मठोंमें ही एक आम यात्रीकी तरह ठहरे।

मार्गके अन्तिम पड़ावके समय लोगोंको कृष्णकुमारकी अनुपम मातृसेवाका परिचय हुआ। जगह-जगह स्वागत हुआ। उन्हें आजके कलियुगका श्रवणकुमार ऐसी उपाधि भी दी गयी।

उनकी माँ अपने पुत्रकी इस अकल्पनीय सेवासे अभिभूत हैं। वे कहती हैं, 'मेरे जीवनकी ये सम्पूर्णता है कि मैंने एक ऐसे पुत्रको जन्म दिया, जिसने मुझे भारतके सभी धार्मिक तथा पुण्यप्रद क्षेत्रोंके दर्शन करानेका अपने जीवनका सर्वोच्च लक्ष्य बना लिया।' स्वयं कृष्णकुमार माँकी ऐसी सेवा कर पानेको अपने जीवनकी महत्तम उपलब्धि बताते हैं। 'धन्य चूडारत्ना माँ, धन्य कृष्णकुमार।'—**कमल लड्ढा**

(२)

पब्लिक स्कूलमें गोशाला

किसी स्कूलमें गोशालाकी कल्पना आज नहीं की जा सकती, वह भी वहाँपर, जहाँ पढ़ाई आधुनिक हो।' केन्द्रीय शिक्षा बोर्डके पाठ्यक्रमसे छात्र-छात्राएँ शिक्षा ले रहे हों। शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी हो और पोशाक पब्लिक स्कूलवाली हो। ऐसे स्कूलमें गोशालाकी बात कोई सोच भी नहीं सकता। लेकिन

इस कल्पनाको साकार किया है पहाड़ोंकी रानी देहरादूनके 'इण्डियन पब्लिक स्कूल' ने। चारों तरफसे हरे-भरे बाग-बगीचोंसे घिरा यह स्कूल और साथमें छात्रावास। जहाँ छात्रावासकी सीमा समाप्त होती है, वहींसे शुरू होता है गोशालाका क्षेत्र। एकसे बढ़कर एक स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट गायें। विद्यालयका प्रबन्धन-मण्डल गोसेवाके कर्तव्यबोधसे प्रेरित है। यहाँ गायें मुनाफाके लिये नहीं पाली गयी हैं। इनका लक्ष्य बच्चोंका उत्तम स्वास्थ्य बनाये रखनेका है। इस समय गोशालामें लगभग २५० लीटर दूधका उत्पादन प्रतिदिन हो रहा है। यहाँसे उत्पन्न दूध, घी, मक्खन आदिका उपयोग स्कूलके छात्रोंद्वारा किया जाता है ओर गायके गोबरका उपयोग विद्यालयके रसोईघरमें गोबरगैसके रूपमें होता है।

आज यह स्कूल लगभग ८० एकड़ क्षेत्रमें फैला है। पहले यह निर्जन क्षेत्र था। इधर आनेसे डर लगता था, लेकिन अब यहाँ शहरका इतना फैलाव हुआ है कि लगता है कि यह स्कूल देहरादून शहरके बीचमें है। जब यह गोशाला शुरू हुई तो उस समय कुछ गायें बिन्द्रा फार्म हाउस मकानपुरसे लायी गयी थीं। वे गायें देशी नहीं, बल्कि जर्सी नस्लकी थीं। २००७ ई० में साहीवाल नस्लकी पाँच गायें और एक साँड़ लाया गया। अगले ही वर्ष गुजरातसे गीर नस्लकी चार गायें लायी गयीं। गोशालामें इस समय कुल लगभग ३५० गायें हैं। समय-समयपर यहाँ देशके प्रमुख लोगोंका आगमन होता रहता है। साधु, सन्त, महात्मा तो आते ही हैं। शिक्षाविद् और राजनेताओंका भी आगमन होता रहता है। विद्यालय इस मायनेमें भी आदर्श है कि अतिथियोंकी सेवाका उचित प्रबन्ध होता है। गोशालापर मासिक खर्च लगभग चार लाख रुपये है, जिसका वहन विद्यालय प्रशासन करता है।—**उमेशप्रसाद सिंह**

(३)

लेन-देनमें नैतिकता

करीब डेढ़ साल हो रहा है मुझे सेवानिवृत्त हुए,एक दिन मैं बैंक जानेके लिये घरसे निकली। पहले तो ई-रिक्शा नहीं मिल रहा था। फिर एक रिक्शा दिखा तो उससे मैंने पूछा—'क्यों भाई, मुट्ठीगंज चलोगे?' 'हाँ जी, जरूर चलूँगा; बैठिये।' 'कितना लोगे?' 'बहनजी! आप जो दे दें।' 'अरे नहीं भाई, बताओ। मैं तो बहुत दिनोंके बाद रिक्शेसे जा रही हूँ, इसलिये मुझे रेट क्या चल रहा है आजकल, पता नहीं है।' तुम्हीं बोलो, 'क्या लोगे?' 'जी, ३० रुपये।' मोल-भाव करनेकी स्वाभाविक आदतवश मैंने कहा—'२५ रुपये ले लो। ३० रुपये तो आर्यकन्या स्कूल तकके होते हैं।' वह बोला—'ठीक है चलिये, २५ रुपये ही दे दीजियेगा।' मैं रिक्शेमें बैठ गयी।

बैंक आनेके थोड़ी देर पहले ही मैंने पर्ससे पैसे निकालकर हाथमें ले लिये, जिससे उतरते समय पैसे निकालनेके कारण देर न हो। बैंक आनेपर उतरकर उसे पैसे देने लगी। थोड़ी देरतक वह पैसेवाला मेरा हाथ देखता रहा। मैंने कहा—लो, वह कभी मुझे देखे तो कभी पैसे देखे, मगर ले नहीं रहा था। मैंने कहा—'क्या बात है? इतनेमें ही तो रिक्शा तय किया था, ले क्यों नहीं रहे हो? क्या कम हैं?'

उसके चेहरेके फिर वही हाव-भाव देखकर मैंने कहा, क्यों भाई, क्या बात है? पैसे ले क्यों नहीं रहे हो? तो वह बोला—'बहनजी! कैसे ले लें! देखिये तो, आप क्या दे रही हैं?' मैंने पैसोंपर नजर डाली तो वह एक बीसका नोट था और एक हरावाला पचासका नोट, जो मैंने हरेवाले पाँचके नोटके बदले गलतीसे दे दिया था। मुँहसे निकला, अरे! मैंने देखा नहीं। अरे भाई, तुम तो बहुत ईमानदार हो। मैंने तय मूल्यसे ५ रुपये बढ़ाकर उसे तीस रुपये दिये। वह बोला—'बहनजी, इसकी क्या जरूरत थी।' मैंने कहा, 'कोई और होता तो बताता ही नहीं, ज्यादा ही पैसे ले लेता।' वह बोला—'नहीं बहनजी! मेहनतकी कमाईमें ही बरक्कत होती है।'

सचमुच उस नेक इन्सानने मुझे बहुत प्रभावित किया। एक दिन मैंने सब्जी खरीदी। दुकानदारने हिसाब जोड़कर बताया। बहनजी! इतने पैसे हुए (कुछ ठीकसे याद नहीं, कितने बताये थे।) मुझे

लगा, सब्जी तो मैंने ज्यादा ली है, पैसे कुछ कुछ कम बता रहा है। एक बार मनमें आया, अरे वह खुद ही तो बता रहा है, इतने पैसे हुए तो देनेमें हर्ज ही क्या है? एकाएक उस रिक्शेवालेकी घटना याद आ गयी। मैंने सब्जीवालेसे कहा—मूलीके पैसे जोड़े, धनिया और इमलीके? 'नहीं बहनजी! भूल गया, सब्जीवाला बोला। फिर सही पैसे सब्जीवालेको देकर चैनकी साँस ली।'

लेन-देनमें नैतिकताका, नियमितताका पालन न करना, सही-गलतका ध्यान न रखना भी एक प्रकारसे चोरी करना ही है। धन-सम्पत्तिपर ही मनुष्यका बाह्य जीवन निर्भर करता है। धनका अनुचित आदान-प्रदान एक प्रकारकी हिंसा है, व्यक्तिके जीवनको नुकसान पहुँचाना है। हम कितने ही ज्ञानी तथा धनी क्यों न हों, प्राय: इन छोटी-छोटी घटनाओंमें हमसे मोहवश चूक हो ही जाती है। हमें रिक्शेवालेकी उपर्युक्त घटनासे प्रेरणा लेनी चाहिये और अपने व्यवहारसे जीवनमें सदैव ईमानदारीका परिचय देना चाहिये।

—**डॉ० सन्ध्या श्रीवास्तव**

(३)

नेपाल यात्राका रोमांचक प्रसंग

दिनांक ३० मई २०१५को नेपालमें आयी प्राकृतिक आपदा भूकम्पने हजारों नेपालवासियोंको कालकवलित करके सम्पूर्ण नेपाल राष्ट्रका जनजीवन बुरी तरहसे प्रभावित कर दिया था। इस घटनासे द्रवित होकर पड़ोसी राष्ट्र भारत और चीनने मानवीय संवेदनाके रूपमें यथासम्भव सहायताके सभी कदम उठाये।

एक चिकित्सक होनेके नाते मुझे उस समय मानव-सेवाका अवसर प्राप्त हुआ; जब इंडियन मेडिकल एसोसिएशनने मुझे नेपालके भूकम्प-पीड़ित नागरिकोंकी चिकित्सा-सहायताके लिये चुना। दिनांक ७ मईको भोपालसे शताब्दी एक्सप्रेसद्वारा नई दिल्ली पहुँचनेके उपरान्त अगले दिन हमारा दल हवाई मार्गसे काठमाण्डू पहुँचा। काठमाण्डूमें दिनांक ७ मईसे १५ मईतक मैंने अपने दलके साथ नेपाली भाई-बहनों एवं बुजुर्गोंका चिकित्सकीय परीक्षणकर उपचार किया। इसी क्रममें हमारा दल दिनांक १३ मईको ११ बजे लांगशाओ नामक (नेपाल-चीन बार्डर)-से वाहन मेटाडोरमें बैठकर चिकित्सकीय सहायताहेतु पोलन जा रहा था। यात्राके दौरान अचानक ही हमने देखा कि एक तरफ आगे लैण्ड स्लाइड हो रही है। क्षणभरमें हमने समझ लिया कि यहाँ तेज भूकम्प पुन: आया है। कहीं कोई लाइफ लाईन नहीं दिख रही थी। मोबाईल फोन लगाना व्यर्थ रहा; क्योंकि कनेक्टीविटी नहीं थी। अचानक ही गजेन्द्रमोक्षका प्रसंग ध्यानमें आनेपर हृदयसे भाव प्रकट हुए '**श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव।**' और कुछ ही मिनट बाद भूकम्प थम जानेके उपरान्त लुढ़कता पर्वत-खण्ड अपना स्थान ले चुका था तथा लैण्ड स्लाइकडिंगकी प्रक्रिया भी थम गयी थी। हम वाहनसे नीचे उतरे और सड़कके किनारेसे सावधानीपूर्वक पैदल ८ कि०मी० पीछेकी ओर चले। लगभग ४ घण्टे पश्चात् हमारा सम्पर्क चीन आर्मीसे हुआ। उन्होंने हमें लांगशाओ पहुँचाया तथा हमारी कुशलताकी सूचना भी सभीके परिवारोंको देकर बात भी करवायी। इसके पश्चात् काठमाण्डू आकर भगवान् पशुपतिनाथके दर्शनकर गायत्रीपरिवारद्वारा संचालित टेण्टमें विश्राम किया तथा फ्लाईटसे नई दिल्ली पहुँचे।

आयोजकोंने हमारा रिजर्वेशन कर्नाटक एक्सप्रेससे करवाया था। भोपालमें हम सभीके परिवारवाले स्टेशनपर प्रतीक्षा कर रहे थे। हमलोगोंको सकुशल पाकर सभीके परिवारके सदस्य भाव-विभोर हो रहे थे। उस समय नेपालका यात्रा-वृत्तान्त, नेपाली भाई-बहन, लुढ़कता हुआ पहाड़ एवं खिसकती हुई धरतीका दृश्य मेरे मस्तकपटलपर छा रहा था और मुझे फिर वही स्मरण हो आया—'**श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव।**'

—**डॉ० प्रशान्तजी त्रिपाठी**

मनन करने योग्य

(१)

तनिक भेदभाव नहीं

श्रीमन्त माधवराव पेशवाके समयकी बात है—महाराष्ट्रमें श्रीरामशास्त्री प्रभु नामके एक सत्यनिष्ठ, निर्भय न्यायाधीश हो चुके हैं। वे बड़े सदाचारी थे। पेशवा माधवरावने रामशास्त्रीको ब्राह्मणोंको दक्षिणा बाँटनेका अधिकार दे रखा था। एक बार श्रीरामशास्त्री दक्षिणा बाँट रहे थे कि इतनेमें उनके बड़े भाई भी दक्षिणा लेने वहाँ आये। रामशास्त्रीके निकट ही राज्यके सर्वोच्च अधिकारी नाना साहब फड़नवीस बैठे हुए थे। उन्होंने सहज भावसे कहा—'शास्त्रीजी! आपके बड़े भाई दक्षिणा लेने आये हैं, इन्हें कुछ अधिक दक्षिणा दे दीजिये।'

श्रीरामशास्त्रीने दृढ़तासे उत्तर दिया—'नहीं महाराज! ऐसा नहीं हो सकता, ये कोई विशिष्ट विद्वान् नहीं हैं, जिससे कि इन्हें अधिक दक्षिणा प्रदान की जाय। बड़े भाईके नाते इन्हें यदि कुछ देना होगा तो मैं अपने पाससे सप्रेम प्रदान करूँगा, परंतु इस समय तो मैं राज्यके एक अधिकारीके रूपमें अपना कर्तव्यपालन कर रहा हूँ। इस कर्ममें मैं तनिक भी भेदभाव नहीं कर सकता।'

(२)

एकान्त कहीं नहीं

दक्षिण भारतके प्रतिष्ठित संत स्वामी वादिराजजीके अनेकों शिष्य थे; किंतु स्वामीजी अपने अन्त्यज शिष्य कनकदासपर अधिक स्नेह रखते थे। उच्चवर्णके शिष्योंको यह बात खटकती थी। 'कनकदास सच्चा भक्त है' यह गुरुदेवकी बात शिष्योंके हृदयमें बैठती नहीं थी।

स्वामी वादिराजजीने एक दिन अपने सभी शिष्योंको एक-एक केला देकर कहा—'आज एकादशी है। लोगोंके सामने फल खानेसे भी आदर्शके प्रति समाजमें अश्रद्धा बढ़ती है। इसलिये जहाँ कोई न देखे, ऐसे स्थानमें जाकर इसे खा लो।'

थोड़ी देरमें सब शिष्य केले खाकर गुरुके समीप आ गये। केवल कनकदासके हाथमें केला ज्यों-का-त्यों रखा था। गुरुने पूछा—'क्यों कनकदास! तुम्हें कहीं एकान्त नहीं मिला?'

कनकदासने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'भगवन्! वासुदेव प्रभु तो सर्वत्र हैं, फिर एकान्त कहीं कैसे मिलेगा?'

(३)

पदको लेनेसे पूर्व पिताकी स्वीकृति आवश्यक

बांग्ला भाषाके जाने-माने लेखक तथा 'आनंदमठ' उपन्यासके रचयिता बंकिमचंद्र चटर्जी बचपनसे ही भारतीय संस्कृति तथा परंपराओंके प्रति श्रद्धाभावना रखते थे। माता-पिताके प्रति उनके हृदयमें सदैव सम्मानका भाव रहता था। सोकर उठते ही बंकिमबाबू उनके चरणस्पर्शकर आशीर्वाद ग्रहण करते थे।

उन्होंने प्रथम श्रेणीमें बी०ए० की परीक्षा पास की। उनकी अनूठी प्रतिभासे प्रभावित होकर बंगालके अंग्रेज उच्चाधिकारी मि० हालिडेने उन्हें अपने बंगलेमें बुलाया। उनकी प्रतिभाकी प्रशंसा करते हुए कहा—'मैं तुम्हें डिप्टी कलक्टर मनोनीत करना चाहता हूँ। अपनी स्वीकृति लिखकर तत्काल दे दें।'

बंकिमचंद्रने धन्यवाद ज्ञापित करते हुए कहा—'सर, मैं अपने पिताकी स्वीकृति लेनेके बाद ही अपनी स्वीकृति लिखकर दे सकता हूँ।'

अंग्रेज लाटसाहबने आश्चर्यसे पूछा—'इतना बड़ा पद तुम्हें मिल रहा है। इसमें पिताकी सहमतिकी क्या आवश्यकता है?'

बंकिमने उत्तर दिया—सर, हम भारतीय लोग माता-पिताकी आज्ञाको सर्वोपरि धर्म मानते हैं। यह ठीक है कि पिताजी आपके इस प्रस्तावसे बेहद खुश होंगे, किंतु किसी भी पदको पानेसे पूर्व उनका आशीर्वाद आवश्यक है।

वे पिताजीके पास पहुँचे। उनका आशीर्वाद प्राप्त करनेके बाद ही बंकिमबाबूने डिप्टी कलक्टर पदके मनोनयनहेतु स्वीकृति प्रदान की। मि० हालिडे भारतीय युवककी पितृभक्ति देखकर हतप्रभ थे।

कल्याणका आगामी ९६वें वर्ष (सन् २०२२ ई०)-का विशेषाङ्क

‘कृपानुभूति-अङ्क’

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्। यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

‘जिनकी कृपा गूँगेको भी वक्ता बना देती है और पंगुको भी पर्वत-लंघनमें समर्थ कर देती है, उन परमानन्दस्वरूप माधवकी मैं वन्दना करता हूँ।’

कृपानिधान भगवान् जैसे अनन्त, असीम और सर्वव्यापक हैं, वैसे ही उनकी कृपा भी अनन्त, असीम और सर्वत्र है। कृपा करना करुणावरुणालय परमात्माका नैसर्गिक गुण है। उनकी कृपा सभी जीवोंपर समानरूपसे रहती है। प्रायः अधिकांश मानव ऐसा अनुभव करते हैं कि जीवनमें जब भीषण संकटमयी परिस्थिति आती है तो उपयुक्त समयपर कोई ऐसी आकस्मिक अप्रत्याशित घटना घटित हो जाती है, जिसके कारण अद्भुत ढंगसे हमारी उस संकटसे रक्षा हो जाती है। नास्तिक लोग ऐसी घटनाओंको ‘संयोग’ कहते हैं, परंतु ईश्वरकी सत्तामें विश्वास करनेवाले आस्तिक जनोंके लिये यह मंगलमय प्रभुकी मंगलमयी कृपा होती है। वैसे भी विश्व-ब्रह्माण्डमें घटनेवाली कोई भी घटना अकारण नहीं होती, जो कुछ भी घट रहा है, वह उन करुणावरुणालयकी परमरहस्यमयी कृपाका परिणाम ही है। अपने धर्मग्रन्थ भगवान्‌की इस कृपा और सन्तों-भक्तोंद्वारा की गयी उसकी अनुभूतिसे भरे पड़े हैं। भागवतादि पुराण, महाभारतादि इतिहास, श्रीरामचरितमानस, आनन्दरामायण, गर्गसंहिता, सन्त-साहित्य एवं लोकसाहित्य भगवत्कृपासम्बन्धी अनुभूतियोंसे सम्यक् रूपसे गुम्फित हैं। ये कृपानुभूतियाँ आस्तिकजनोंको आह्लादित तो करती ही हैं, साथ ही उन्हें रक्षासम्बन्धी या संकटसे निवारण-सम्बन्धी आश्वासन भी देती हैं।

भगवान् **‘सुन्दरं सुन्दराणाम्’** (सुन्दर-से-सुन्दर) और **‘भीषणं भीषणानाम्’** (भयानक-से-भयानक) हैं; वे **‘मृदूनि कुसुमादपि’** (पुष्पसे भी अधिक कोमल) और **‘वज्रादपि कठोराणि’** (वज्रसे भी अधिक कठोर) हैं, अतः उनकी कृपा भी सुन्दर, भयानक, कोमल और कठोर-जैसे विभिन्न रूपोंमें दिखायी देती है, परंतु सत्य तो यही है कि—***‘प्रभु मूरति कृपामई है।’*** अर्थात् प्रभु तो कृपा और करुणाके मूर्तिमान् स्वरूप ही हैं। उनका हर विधान मंगलमय और जीवके मंगलका विधायक है। भगवत्सम्मुख भक्तोंके लिये उनकी कृपा **‘सुन्दरं सुन्दराणाम्’** है तो भगवद्विमुख जनोंके लिये वह **‘भीषणं भीषणानाम्’** है। कंस, शिशुपाल, दन्तवक्र और रावण-कुम्भकर्णादिपर उनकी कृपा **‘वज्रादपि कठोराणि’** है, तो सुदामा, व्रजगोपियों, शबरी और जटायु आदिपर उनकी कृपाका रूप **‘मृदूनि कुसुमादपि’** है।

भगवत्कृपाकी ये अनुभूतियाँ भगवद्विमुख जीवोंको भी परमात्मप्रभुकी ओर उन्मुख बनानेमें सहायक होती हैं। इसी उद्देश्यसे कल्याणमें ऐसी घटनाएँ प्रारम्भसे ही दी जाती रही हैं। ऐसी घटनाएँ रोचक होनेके साथ ही भगवत्कृपाके प्रति श्रद्धा-विश्वास बढ़ानेवाली होनेके कारण विद्वानों और जन-सामान्य—दोनों द्वारा ही प्रशंसित रही हैं। विगत पाँच दशकोंसे ये घटनाएँ ‘पढ़ो, समझो और करो’ तथा लगभग पन्द्रह वर्षोंसे ‘कृपानुभूति’ नामसे स्वतन्त्र स्तम्भके रूपमें प्रकाशित हो रही हैं। ये घटनाएँ कल्याणके पाठकोंकी अनुभूत सत्य घटनाएँ होनेसे यह स्तम्भ अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। पाठकोंका निरन्तर यह आग्रह रहता है कि इसे एकसे अधिक पृष्ठका किया जाय, परंतु मासिक कल्याण के पृष्ठोंकी संख्या सीमित होनेसे ऐसा कर पाना सम्भव नहीं था। अतः विद्वान् और भगवत्प्रेमी पाठकोंके विशेष आग्रहको देखते हुए इस वर्ष कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें **‘कृपानुभूति-अङ्क’** प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया है, जिसमें भगवान्‌पर श्रद्धा-विश्वास बढ़ानेवाली तथा भगवल्लीलाका अनुभव करानेवाली रोचक, कथात्मक, स्वयं या किसी महापुरुषद्वारा अनुभूत घटनाएँ दी जायँगी। इस सन्दर्भमें सुहृद एवं सुधी पाठकोंसे निवेदन है कि वे लेखके स्थानपर अपने जीवनमें घटित भगवत्कृपा, इष्टकृपा, कुलदेवताकी कृपा, सन्तकृपा, ग्रन्थकृपा या गोमाता इत्यादिकी कृपासे सम्बन्धित घटनाएँ ही भेजें।

सभी सन्त-महात्माओं, लेखक महानुभावों तथा भक्तजगत्‌के प्रेमी सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे इस विशेषाङ्कके लिये आलेखके स्थानपर भगवत्कृपाके अपने अनुभव **१५ अगस्त २०२१ ई०** तक भेजनेकी कृपा करें।

विनीत—

प्रेमप्रकाश लक्कड़

(सम्पादक)

प्रस्तावित विषय-सूची

१- कृपानुभूतिका तात्पर्य।
२- कृपानुभूतिके प्रकार।
३- कृपानुभूतिकी पात्रता।
४- गणेश, शिव, शक्ति, विष्णु आदि पंचदेवोंकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
५- राम, कृष्ण, हनुमान्, सीता, राधा आदि अवतारोंकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
६- सूर्यादि नवग्रहोंकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
७- गोमाताकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
८- गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी, सरयू आदि पवित्र नदियोंकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
९- गोवर्धन, कामदगिरि, विन्ध्याचल आदि पर्वतोंकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
१०- काशी, मथुरा, अयोध्या आदि पुरियोंकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
११- ज्योतिर्लिंगों, शक्तिपीठों, बदरीनाथ, तिरुपति आदि तीर्थक्षेत्रों एवं भगवद्धामोंकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
१२- अश्वत्थ, तुलसी, वट आदि पवित्र वृक्षोंकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
१३- वेद, भागवतादि पुराण, वाल्मीकीयरामायण आदि आर्षग्रन्थोंकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
१४- रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, दासबोध, गुरुचरित आदि सिद्धग्रन्थोंकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
१५- गुरु-कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
१६- सन्त-कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
१७- कुलदेवता, ग्रामदेवता एवं लोकदेवताकी कृपासम्बन्धी अनुभूतियाँ।
१८- कृपानुभूतिके उपाय (प्रार्थना, नाम-जप, अनुष्ठान, दान, पूजोपचार, स्तोत्र-पाठ, भजन इत्यादि) यथा—
  १- दुर्गासप्तशती-पाठसे कृपानुभूति।
  २- रामरक्षास्तोत्र-पाठसे कृपानुभूति।
  ३- गजेन्द्रमोक्ष-पाठसे कृपानुभूति।
  ४- विष्णुसहस्रनाम-पाठसे कृपानुभूति।
  ५- नारायणकवच-पाठसे कृपानुभूति।
  ६- शिवकवच-पाठसे कृपानुभूति।
  ७- आदित्यहृदयस्तोत्र-पाठसे कृपानुभूति।
  ८- गोपालसहस्रनाम-पाठसे कृपानुभूति।
  ९- शीतलाष्टक-पाठसे कृपानुभूति।
  १०- अभिलाषाष्टक-पाठसे कृपानुभूति।
  ११- सन्तानगोपालस्तोत्र-पाठसे कृपानुभूति।
  १२- इन्द्राक्षीस्तोत्र-पाठसे कृपानुभूति।
  १३- दत्तात्रेयवज्रकवच-पाठसे कृपानुभूति।
  १४- सिद्धसरस्वतीस्तोत्र-पाठसे कृपानुभूति।
  १५- संकटनाशनगणेशस्तोत्र-पाठसे कृपानुभूति।
  १६- ऋणमोचनमंगलस्तोत्र-पाठसे कृपानुभूति।
  १७- कनकधारास्तोत्र-पाठसे कृपानुभूति।
  १८- अन्नपूर्णास्तोत्र-पाठसे कृपानुभूति।
  १९- श्रीसूक्त-पाठसे कृपानुभूति।
  २०- चाक्षुषोपनिषद्-पाठसे कृपानुभूति।
  २१- पंच-अथर्वशीर्षोंके पाठसे कृपानुभूति।
  २२- शिवपंचाक्षरमन्त्र-जपसे कृपानुभूति।
  २३- षोडशाक्षरनाममन्त्र-जपसे कृपानुभूति।
  २४- अष्टाक्षरनारायणमन्त्र-जपसे कृपानुभूति।
  २५- महामृत्युंजयमन्त्र-जपसे कृपानुभूति।
  २६- गायत्रीमन्त्र-जपसे कृपानुभूति।
  २७- हनुमान-चालीसाके पाठसे कृपानुभूति।
  २८- संकटमोचन हनुमानाष्टकके पाठसे कृपानुभूति।
  २९- श्रीसत्यनारायण-व्रतकथाकी कृपानुभूति।
  ३०- रविवार आदिके व्रतानुष्ठानसे कृपानुभूति।
  ३१- एकादशी-प्रदोषादिव्रतोंसे सम्बन्धित कृपानुभूतियाँ।
  ३२- ग्रहशान्तिसे कृपानुभूति।
  ३३- वास्तुशान्तिसे कृपानुभूति।
  ३४- विनायकशान्तिसे कृपानुभूति। इत्यादि।
१९- पार्वणश्राद्ध, गयाश्राद्ध आदि श्राद्धकर्मोंसे कृपानुभूति।
२०- असफलतामें छिपी कृपाकी अनुभूतियाँ।
२१- कृपानुभूतिसे उत्पन्न वैराग्यकी घटनाएँ।
२२- रोगियों और आर्तजनोंकी कृपानुभूतियाँ।
२३- मृत्युशय्यापर कृपानुभूतियाँ।
२४- सत्यनिष्ठा एवं कर्तव्यपालनसे कृपानुभूति।
२५- दुर्गुणोंके त्यागसे आत्मकृपानुभूति।
२६- कृपानुभूतिके अभिमानके दुष्परिणाम।
२७- कृपानुभूतिके बाद हमारा कर्तव्य।

नवीन विशिष्ट प्रकाशन—अब उपलब्ध

श्रीमद्भगवद्गीता [सचित्र, ग्रन्थाकार]—जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर प्रसंगानुकूल 129 आकर्षक चित्रोंके साथ चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर प्रकाशित की गयी है।

दशमोऽध्यायः
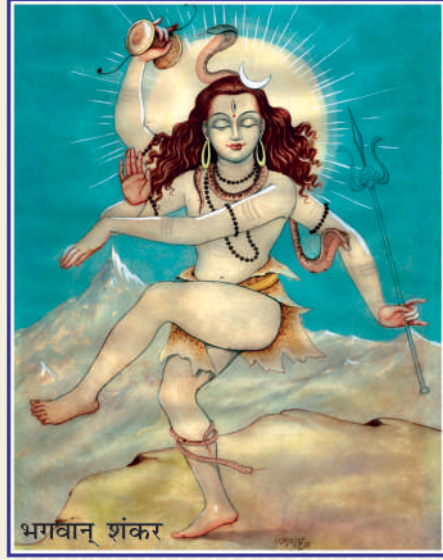
भगवान् विष्णु — भगवान् शंकर

आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥

मैं अदितिके बारह पुत्रोंमें विष्णु और ज्योतियोंमें किरणोंवाला सूर्य हूँ तथा मैं उनचास वायुदेवताओंका तेज और नक्षत्रोंका अधिपति चन्द्रमा हूँ ॥ २१ ॥

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां ... चेतना ॥

मैं वेदोंमें ... और भूत प्राणियोंकी चेतना ...

श्रीमद्भगवद्गीता
के एक पृष्ठका नमूना (कोड 2267)
मूल्य ₹ 250, डाकखर्च ₹ 70

रुद्राणां शङ्करश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥

मैं एकादश रुद्रोंमें शङ्कर हूँ और यक्ष तथा राक्षसोंमें धनका स्वामी कुबेर हूँ। मैं आठ वसुओंमें अग्नि हूँ और शिखरवाले पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत हूँ ॥ २३ ॥

पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥

१२७

प्र० ति० 20-05-2021
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT	LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित रंगीन चित्र-कथाएँ

[बायें पृष्ठपर चित्र तथा दाहिने पृष्ठपर कथा]